
G.L.SAH

रक्षक-भक्षक

लेखक की कुछ पुस्तकें

दर्शन और विज्ञान

१.	ऐतिहासिक भौतिकवाद	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद	६)
२.	सेक्स से सुख और जीवन	किताब महल	१)
३.	अपराध विज्ञान	,,	३)

आलोचना

४.	प्रेमचन्द (७६७ पृष्ठ)	,,	७ा)
५.	शरतचन्द्र	,,	२ा)
६.	बंगला के आधुनिक कवि	,,	१ा)

उपन्यास

७.	जिच	,,	१)
८.	सुधार	,,	१ा)
९.	जययात्रा	,,	१)
१०.	चक्की	केसरवानी प्रेस	३)
११.	दुश्चरित्र	प्रगति प्रकाशन, दिल्ली	२)
१२.	अन्धेर नगरी	,,	३)
१३.	बलि का बकरा	,,	१)

राजनीति और इतिहास

१४.	अगस्त क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति	केसरवानी प्रेस	२ा)
१५.	भारत में सशस्त्र क्रान्ति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास (दो भाग)	छात्र हितकारी प्रेस	८)
१६.	भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	शिवलाल अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा।	७ा)

प्रेस में

१७. होटल डी ताज (छप रहा है)

अन्य कई पुस्तकें प्रेस में। अपने बुकसेलर से मँगाइये।

रक्षक-भक्षक

मन्मथनाथ गुप्त

आलोक प्रकाशन बीकानेर

१९५२] [दो रुपये

प्रकाशक
आलोक प्रकाशन
खजांची बिल्डिंग,
बीकानेर।

मूल्य २)

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस,
दिल्ली।

: १ :

डाक्टर साहब ने आये हुए रोगी को ध्यान से देखा, और वे समझ गए कि रोगी जितना घबड़ाया हुआ है, उसका रोग उतना कठिन नहीं है। फिर उन्होंने उसके कीमती कपड़े, कलाई की घड़ी तथा जूते देखे, और बोले—कहिये....कह कर उन्होंने यन्त्रचालित की तरह अपनी मेज़ पर रखे हुए स्टेथोस्कोप की तरफ हाथ बढ़ाया।

रोगी ने कहा—मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आया हूं। इसके पहले मैं कई डाक्टरों को दिखा चुका, पर मेरी शिकायत दूर नहीं होती।

डाक्टर साहब ने कहा—कहिये क्या शिकायत है, मैं तो इसी-लिए बैठा हूं। मैं यथासाध्य चिकित्सा करूंगा, पर मेरे हाथों में सब-कुछ थोड़े ही है।

रोगी ने कहा—मुझे यों ऊपर से कोई शिकायत नहीं मालूम देती, पर कई कारणों से मेरी ऐसी धारणा हो गई है कि मैं जल्दी ही मर जाऊंगा। मुझे इसी फिक्र में रात को नींद नहीं आती। कभी रात के अन्तिम पहरों में नींद आ जाय तो आ जाय। दिन को ही

एक

सोता हूं, पर उस वक्त भी दो-तीन विश्वस्त आदमियों को पहरे पर रखता हूं कि वे मुझ में जब कोई लक्षण देखें तो मुझे जगा दें।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप रोगी की बात सुनकर मन-ही-मन कुछ हँसे, पर चेहरे की गम्भीरता को कायम रखते हुए स्टेथोस्कोप लगाते हुए बोले—ज़रा लम्बी साँस लीजिये—कहकर वे रोगी की परीक्षा करने में तल्लीन हो गए।

देर तक सीना, पीठ, कन्धा देखकर कुछ न पाते हुए बोले—आखिर शिकायत क्या है ?

शिकायत वही है जो मैंने बतलाया। न उससे तिल-भर ज्यादा न उससे तिल-भर कम। मैं यह अनुभव करता हूं कि मैं द्रुत-गति से समाप्त हो रहा हूं। बाहर से कोई शिकायत नहीं मालूम होती, लेकिन है कुछ बात जरूर। कोई डाक्टर पकड़ नहीं पाया, इस कारण मैं आपके पास आया।—कहकर उसने डाक्टर को बारी-बारी से सन्देह तथा विश्वास की दृष्टि से देखा।

डाक्टर ने यद्यपि स्टेथोस्कोप से कुछ नहीं पाया था, फिर भी उसने डाक्टरों की रीति के अनुसार रोगी की जीभ, दांत आदि देखे, पर कहीं भी कुछ नुक्स दिखाई नहीं दिया। डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप इस बात को कहने ही वाले थे कि आप में मैं कोई बात नहीं पा रहा हूं कि एकाएक उसके मन में यह बात आई कि यदि इस रोगी से सत्य बोलता हूं तो यह मुझसे विदा होता है, पर यदि कोई नुक्स बता देता हूं तो इलाज कराएगा, और मुझे सैकड़ों रुपये मिलेंगे। रोगी धनी मालूम होता था, और साथ-ही-साथ झक्की भी था, इस कारण पैसा फूंकने में वह हिचकिचाने वाला नहीं था।

फिर भी अभी डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने दूसरे कई डाक्टरों की तरह इस तरफ कदम नहीं रखा था। मन में कुछ हिचकिचाहट थी। यों ही पैसे काफी आ रहे थे। पर इधर छोटी लड़की के व्याह में काफी दिक्कत हो रही थी। दहेज में लक्ष्मणस्वरूप २० हज़ार नकद तथा

२० हजार के गहने आदि देने को तैयार था, पर उधर वाले ज़्यादा माँग रहे थे। इस कारण कुछ फिक्र पड़ गई थी। बोले—आपकी जाँच अभी पूरी नहीं हुई। पूर्ण तरीके से जाँच करने के बाद ही कुछ कह सकूँगा। आपने अपने पेशाब वगैरह की जाँच तो कराई होगी न? नहीं तो कराना पड़ेगा।

रोगी इस बात से बहुत खुश हुआ मानों उसकी मनोवांछा पूर्ण हो गई। उसका चेहरा खिल गया, बोला—अभी तक किसी ने मुझे ऐसा कराने के लिए नहीं कहा था, अब आप कहते हैं तो फौरन कराऊँगा—कह कर फिर एकाएक स्वर नीचा करते हुए कहा मानों कोई बहुत गुप्त बात पूछ रहा हो—तो आपने कुछ नुक्स पाया?

लक्ष्मणस्वरूप ने थूक निगलते हुए कहा—पूरी बात तभी हो सकेगी जब जाँच हो जाय।

रोगी ने ब्यौरा पूछा कि कैसे जाँच कराई जाय, तो डाक्टर साहब ने अपने मित्रों के नाम बता दिये, बल्कि उनके नाम से पत्र भी दे दिये। मामूली तौर से जाँच का काम समाप्त हो चुका था। दो-एक रोगी इन्तजार भी कर रहे थे। फिर भी कौतूहल के वश में आकर डाक्टर ने पूछा—यह तो बताइये कि आपके घर में कौन-कौन हैं?

डाक्टर ने यह प्रश्न इस कारण पूछा कि उसे कुछ सन्देह हुआ कि इस रोगी का दिमाग़ सम्पूर्ण रूप से सही नहीं है। रोगी ने कहा—डाक्टर साहब, यों मेरे घर पर तो सभी हैं, बस पत्नी के मर जाने से सारी गड़बड़ियां हो गई हैं। मैंने बेवकूफी में आकर फिर से शादी कर ली, इसी से सब बेटे मेरे दुश्मन हो गये हैं। वे मुझे नहीं चाहते, मेरी सम्पत्ति को चाहते हैं।

डाक्टर ने कहा—पर आपकी नई बीबी तो आपको चाहती होगी न? फिर आपको क्या चिन्ता?

—यही तो बात है कि वह भी मुझे नहीं चाहती। उसने भी मुझसे नहीं मेरे धन से शादी की है। वह भी यही चाहती है कि मैं

जल्दी से मर जाऊँ जिससे कि वह निर्विघ्न हो जाय।

डाक्टर ने ध्यान से रोगी की ओर देखा मानों वे यह देख रहे हों कि इसके सब पुर्जे ठीक तो हैं। बोले—यह आप क्या बात कह रहे हैं? पति के मरने के बाद स्त्रियों के लिए कौनसा सुख भोगने को रह जाता है?

अरे आप यही तो नहीं जानते। मेरी स्त्री के दो भाई हैं, उन लोगों ने यही समझकर अपनी बहिन के साथ शादी कर दी है कि मैं जल्दी ही चल बसूंगा, तब उन लोगों के मज़े रहेंगे।

डाक्टर साहब सुनकर दंग रह गये, पर उन्हें यह बात याद आई कि अपनी लड़की के ब्याह में उन्हें भी कितनी दिक्कत आ रही है। अपनी प्रतिष्ठा का खयाल है, नहीं तो कई बार उनके मन में यही विचार आता था कि जो भी पात्र मिले उससे लड़की का ब्याह कर दिया जाय। वे लड़कीवालों की दिक्कत को पूरे तरीके से समझते थे। बोले—आपको कुछ वहम हो गया है। आपके जिन्दा रहने पर ही आपके सालों की भलाई है।

—पर वे इस बात को समझें तब न?

उस दिन बातचीत वहीं तक रह गई। डाक्टर लछमणस्वरूप अगले रोगियों को देखने लग गये, और लाला दीनानाथ चले गये। डाक्टर साहब अन्य रोगियों को देखते तो जाते थे, पर उनका ध्यान लाला दीनानाथ पर ही जमा रहा। वे इसी बात को बार-बार तौल रहे थे कि लाला दीनानाथ से साफ-साफ कह दिया जाय कि उनको कोई रोग नहीं है, या उन्हें कोई रोग बताकर रुपये सीधे किये जायं। अब तक उन्होंने ईमानदारी से ही काम लिया था। यों तो उन्हें मालूम था कि बहुत-से डाक्टर रोगियों को भुलावे में रखकर यहां तक कि उनका रोग बढ़ाकर उनसे पैसा ऐंठते हैं, पर उनका मन इस प्रकार के कार्य के लिए गवाही नहीं देता था।

यह ऐसा विषय था कि इस पर वे किसी की सलाह भी नहीं ले

सकते थे। जिससे सलाह लेते, वही राज़दाँ बनता, और उन पर हँसता। इसलिए किसी से कुछ कहते भी नहीं बना। वे मन-ही-मन घुलने लगे।

: २ :

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप अच्छे-भले गृहस्थ थे। उनका एकमात्र लड़का डाक्टरी पढ़ रहा था, और दो लड़कियों की शादी हो चुकी थी। छोटी लड़की वीणा अभी कुमारी थी, और कालेज में पढ़ती थी। बड़ी लड़कियों के विवाह में डाक्टर साहब बहुत खर्च कर चुके थे, इस कारण अब उनका हाथ खाली-सा था। बड़ी लड़कियों की शादियों के मौकों पर वे अधिक खर्च इस कारण कर सके थे कि उन दिनों दस-पन्द्रह साल की कमाई जुड़ गई थी। पर बड़ी लड़कियों के बाद अभी तीन-चार साल ही गुज़रे थे कि छोटी लड़की की शादी की फिक्र पड़ गई थी। इधर जब से उनका लड़का विकास मेडिकल कालेज में दाखिल हुआ था, तब से उसे दो सौ से लेकर तीन सौ तक माहवार भेजना पड़ता था। अन्य खर्च भी बढ़ गये थे। बड़ी लड़कियों की शादी के बाद उनसे छुट्टी मिल गई हो ऐसी बात नहीं। उनको भी किसी-न-किसी बहाने जब-तब सौ-दो सौ चढ़ाना पड़ता था। अपनी परिस्थिति बनाये रखने के लिए इधर एक नई कार भी लेनी पड़ी थी, और अब की बार पहले से अच्छी कार लेनी पड़ी थी। उसके दाम की किश्त अभी तक जारी थी।

इन्हीं सब बातों के कारण वे चिन्ताग्रस्त रहते थे। इतने में उनके पास लाला दीनानाथ के रूप में यह झक्की रोगी आया। उन्हें विश्वास था कि यदि लाला दीनानाथ को फँसा सके तो उससे छः महीनों के

अन्दर दस हज़ार रुपये ऐंठ लेना कोई बड़ी बात नहीं है। लाला दीनानाथ के लिए यह रकम कुछ भी नहीं है, और डाक्टर साहब का काम बन जाता था। कम-से-कम उनके सामने दिवालियापन का जो प्रेत मुंह बाये हुए खड़ा था, उसे सामयिक रूप से रोकना तो सम्भव था। सचमुच इन दिनों परिस्थिति इतनी खराब हो रही थी कि कई बार डाक्टर साहब अपनी मृत्यु-कामना भी करते थे।

एक बार इसी निराशा में डाक्टर साहब ने अपनी पत्नी सत्यभामा से यह कहा था कि उनकी इच्छा है कि वीणा भी अपने भाई विकास की तरह डाक्टर बने। ऐसा प्रस्ताव रखने में उनका उद्देश्य यह था कि विवाह के मौके पर एक मुश्त में जो बीसेक हजार रुपये खर्च करने पड़ते उससे बच जायँ। पर उनकी पत्नी ने इस प्रस्ताव को बिल्कुल रद्दी की टोकरी में डाल दिया था। बोली थी—वाह! यह भी कोई बात है कि लड़की डाक्टर बनेगी, तुम्हारे तो दिमाग में फितूर मालूम होता है। सभी को डाक्टर बनाना चाहते हो। यह नहीं सोचते कि सारी दुनिया डाक्टर हो जाय तो मरीज़ कौन रहेगा?

जब डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने देखा कि सत्यभामा इस प्रस्ताव पर बिल्कुल राज़ी नहीं है तो एक बार उनके जी में आया कि असली परिस्थिति खोल कर बता दें, पर गहराई के साथ सोचने पर वे इस नतीजे पर पहुंच गये कि ऐसा करना लाभप्रद नहीं होगा। २७ साल पहले सत्यभामा से उनकी शादी हुई थी। वे कभी अपनी पत्नी को खर्च से रोक न सके। परेशान होकर वे और अधिक कमाते, पर सत्य-भामा उर्फ सत्या और अधिक खर्च करती। ताज्जुब तो यह था कि सत्या के बावजूद वे दो लड़कियों की शादी में ३५ हज़ार (लोगों से तो कहा जाता था ५० हजार) खर्च कर सके थे। सत्या केवल खुद ही खर्चीली नहीं थी, बल्कि वह अपने लड़के और लड़कियों को खर्चीली बना चुकी थी।

उसी के प्रोत्साहन के कारण विकास महीने में तीन सौ रुपये मंगा

कर खर्च कर डालता था। इसलिए सत्या से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ था।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने मौका पाकर वीणा से ही कहा—बेटी मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम भी डाक्टर बनो।

वीणा ने पिता के मुंह की तरफ देखा पर कुछ बोली नहीं। सहसा उसको यह सूझा नहीं कि वह क्या कहे।

डाक्टर साहब ने कहा—तुम्हारी दो बड़ी बहनें पढ़ने-लिखने में उतनी तेज़ नहीं थीं, इस कारण मैंने अपने मन की इच्छा उन पर व्यक्त नहीं की। पर तुमने विज्ञान लिया, और पढ़ने-लिखने में तेज़ भी हो......

कहकर डाक्टर साहब लड़की के मुंह की तरफ देखने लगे। यों डाक्टर साहब अपनी लड़की को डाक्टर बनाने के लिए कभी तैयार न होते, पर आर्थिक संकट के कारण वे पुत्री के सामने यह प्रस्ताव लेकर आये थे। बात यह है इस से वे बड़ी भारी उलझन से बच जाते।

वीणा ने पिता की मुंह की तरफ देखा, फिर बोली—मम्मी से पूछ लूँगी।

—मम्मी से क्या पूछोगी? मैं उनसे बातचीत कर चुका हूं, वह तो कहती हैं कि सब डाक्टर हो जायँगे तो मरीज़ कौन रहेगा?—कहकर डाक्टर साहब ने हंसने की चेष्टा की, पर चेहरे पर हंसी न आकर वह अजीब-सा बनकर रह गया।

वीणा इसके पहले ही इस सम्बन्ध में घर में कानाफूसी सुन चुकी थी और वह यह भी निश्चित रूप से जानती थी कि उसकी मम्मी उसके डाक्टर बनने के सम्पूर्ण विरुद्ध है। यद्यपि वह पढ़ने-लिखने में अच्छी थी, फिर भी अब उसका जी पढ़ने में कम लगता था और डाक्टरी पढ़ने का अर्थ चार वर्षों तक कठिन-से-कठिन परिश्रम करना था। इसके लिए वह बिलकुल तैयार नहीं थी। बोली—मुझे डाक्टरी का काम न मालूम क्यों उतना रुचता नहीं है।

डाक्टर साहब समझ गये कि यह पहले ही से अपने मन को बनाकर बैठी है, और यहां दाल नहीं गलेगी। वे बहुत रुष्ट हुए, और उनके मुँह पर ये शब्द करीब-करीब आ गये कि जो काम रुचता नहीं, उसकी कमाई खाती कैसे हो, पर कुछ समझ कर संयम कर गये, और कुछ बोले नहीं। वे मुंह बनाकर वहां से उठ गए।

इतने में एक टेलीफोन आया। किसी मरीज का है, समझकर वे जल्दी से टेलीफोन के पास गये। वहां मालूम हुआ कि कोई मरीज नहीं बल्कि उनके मित्र डाक्टर भटनागर बोल रहे हैं। डाक्टर भटनागर नगर के प्रसिद्ध पैथोलाजिस्ट और बैक्टिरियोलाजिस्ट थे। उन्होंने कहा—भई तुमने यह जो लाला दीनानाथ को मेरे यहां पेशाब आदि की जांच के लिए भेजा है, यह तो अजीब आदमी मालूम होता है। तब से मेरे पास डटा हुआ है। मैंने जांच की तो इसकी यूरिन या स्प्यूटम में कोई बात नहीं पाई। पर यह तो पीछा नहीं छोड़ता, कहता है—फीस चाहे जितनी लेलो, पर रोग का पता लगा दो। भला बताओ कि कोई रोग हो भी तो बताऊँ। दुबारा जांच कर चुका, पर अब की बार भी कोई बात मालूम नहीं होती। अब तुम ही बताओ कि मैं क्या करूँ ?

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप इसके उत्तर में केवल बोले—अच्छा यह बात है।—बात यह है कि वे इस सम्बन्ध में कुछ सोच नहीं पाये थे।

उधर से डाक्टर भटनागर ने कहा—असामी अच्छा मालूम होता है, जैसा कहो, वैसा बता दें। पर याद रखना, हा-हा-हा-हा।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने अभी तक ऐसा काम नहीं किया था। वे अभी तक ईमानदारी से ही चलते आये थे। उनके सम्बन्ध में ऐसा सन्देह किया जा रहा है, इससे झेंपकर वे बोले—नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं केस की सच्ची रिपोर्ट चाहता हूं।

उधर से डाक्टर भटनागर हहराकर हंसे मानों यह कोई ऐसी बात हो जो हँसने लायक हो। बोले—हा हा हा ! कहीं दाई

से पेट छिपता है ? अरे भई, कमीशन न देना हो न देना, पर मैं तो वही करूँगा जिसमें तुम्हारी भलाई हो। बस हम से कह दो कि क्या चाहते हो, बस उसी तरह की रिपोर्ट तैयार कर दूं। हां, नहीं तो तुम भी क्या कहोगे कि किसी रईस से पाला पड़ा था।

डाक्टर भटनागर से इस लहजे में कभी बातचीत सुनने के आदी न होने के कारण डा० लक्ष्मणस्वरूप को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतना तो वे समझ गये कि इस दुनिया में इस प्रकार के काम बहुत होते हैं। वे ही इससे अनभिज्ञ थे। नहीं नहीं, अनभिज्ञ नहीं वे जान-बूझकर इससे अलग रहते थे। उनकी अन्तरात्मा जानती है कि वे अब भी इससे अलग रहना चाहते हैं, पर उनकी पत्नी सत्यभामा, पुत्री वीणा तथा पुत्र विकास किसी की तरफ से कोई सहयोग भी तो हो। टेलीफोन के रिसीवर को कान से लगाये हुए वे एक मुहूर्त में इन सारी बातों को सोच गये। झल्लाकर बोले—यह क्या दिल्लगी है, मेरी समझ में नहीं आती। तुम तो मुझे बचपन से जानते हो। मैं ऐसी बातों में विश्वास नहीं करता। मैं तो अपने कार्य को एक सेवा समझता हूं।

उधर से डाक्टर भटनागर फिर हँसे। बोले—हा-हा-हा-हा, मैं कब कहता हूँ कि यह सेवा नहीं है। पर यह भी तो याद रखो कि ऐसी सेवा किस काम की जिसके साथ मेवा खाना लगा न हो। क्या किया जाय—रोगी और डाक्टर का सम्बन्ध, भक्ष्य-भक्षक का सम्बन्ध कर दिया गया है। जो घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या ? और यह जो जो तुमने कहा कि तुमने कभी ऐसा काम नहीं किया, सो मां के पेट से कौन इन कामों को सीख कर आता है......?

शायद डाक्टर भटनागर और कुछ कहते पर उनकी बातों को बीच में काटकर डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने कहा—भई, मैं तो बिल्कुल सच्ची रिपोर्ट चाहता हूं।—कहकर उन्होंने झल्लाहट के साथ टेली-फोन बन्द कर दिया।

टेलीफोन बन्द करने के बाद उन्हें यह ख्याल आया कि डाक्टर भटनागर के साथ उन्होंने नाहक अभद्रता की। आखिर वह अपना दृष्टिकोण रख रहा था, वे चाहे इसे न मानते, पर इस प्रकार झल्लाहट में आकर टेलीफोन बन्द कर देने का कोई अर्थ नहीं होता। उन्हें बड़ा अफसोस हुआ कि तैश में आकर उन्होंने ऐसा क्यों किया। बात कुछ ठीक भी थी कि घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या? जितने भी ईमानदार डाक्टर वे बने, क्या यह सच नहीं है कि जब शीत ऋतु के अन्त में बीमारियों का मौसम शुरू होता है, तो वे खुश नहीं होते? अब तो हर मौसम में उनके पास मरीज़ आते हैं, पर कभी वे एक नौजवान डाक्टर थे, और जीवन-संग्राम में अभी खड़े नहीं हो पाये थे, तब ऐसे मौसम उनके लिए बहुत सुखकर होते थे। क्या यह बात सच नहीं है? बार-बार उनके मन में वे ही शब्द आ रहे थे कि घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या? सच तो है।

इसी प्रकार सोचते हुए उन्होंने एक चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी पत्रिका उठा ली, और उसे पढ़ने लगे। इतने में एक 'काल' आ गया, और वे गाड़ी पर सवार होकर चले गये।

: ३ :

जब डाक्टर भटनागर ने लाला दीनानाथ को अपनी रिपोर्ट दी, तो लाला दीनानाथ ने उसे घुमा-फिराकर देखा, पर कुछ समझ में नहीं आया। बोले—आप तो कह रहे हैं कि जो कुछ है सो इसी रिपोर्ट में है, सो यह मेरी समझ में तो नहीं आता कि इसमें क्या लिखा है।

डाक्टर भटनागर ने अत्यन्त रुखाई के साथ कहा—मैं तो आपको सौ बार कह चुका कि आपको कोई रोग नहीं है, पर आप तो मानते नहीं, ज़िद करते हैं। मेरा काम रोग देखना है न कि पैदा करना—कह कर उन्होंने अपने असिस्टेन्ट से इशारा किया, और उसने उन्हें एक बिल दिया। वे स्वयं लेबारेटरी के अन्दर घुस गये, उसका स्प्रिंगदार दरवाज़ा खुद-ब-खुद बन्द हो गया।

लाला दीनानाथ पैसे देकर रिपोर्ट लेकर निकल पड़े। उनको कुछ डर था कि इसी प्रकार की रिपोर्ट मिलेगी। इसके पहले भी वे चार-छः जगह अपनी यूरिन आदि की जाँच करा चुके थे, और सब जगह से उन्हें इसी प्रकार टका सा उत्तर मिला था।

इस प्रकार की रिपोर्टों के कारण उन्हें यह भी सन्देह हो गया था कि हो-न-हो उनके सालों के ही कारण ऐसी रिपोर्ट मिलती हो। इस लिए उन्होंने दो-एक बार चुपके से अपने शहर से बाहर जाकर यूरिन आदि की परीक्षा कराई थी। पर सर्वत्र वही उत्तर मिला था। आज भी फिर वही निराशा हुई।

उन्हें इतना क्रोध आया कि इच्छा हुई कि रिपोर्ट को टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डालें। ये डाक्टर भी अजीब बदमाश हैं। पैसे लेने को ले लेंगे, पर रोग नहीं बतायेंगे। मानों सारा जगत् उनके विरुद्ध षड्यंत्र करने पर तुला हुआ है।

वे रिपोर्ट को जेब में रखकर घर पहुँचे। पहले इच्छा तो यही थी कि सीधा डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के यहां पहुँचें और उन्हें रिपोर्ट दिखावें, पर वे डरते थे कि कहीं डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप भी रिपोर्ट को देखकर उन्हें निराशाजनक उत्तर न दे दें। एक साथ दो निराशाओं को सहने की शक्ति उन्होंने अपने में नहीं पाई, इसी कारण वे घर चले गये।

वे डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप से होनेवाली निराशा को जहाँ तक हो सके टालना चाहते थे। इस कारण उन्होंने तय किया कि वे अगले

दिन डाक्टर साहब से मिलेंगे। इस बीच में वे अन्य कामों में लग गये।

यद्यपि लाला दीनानाथ को यह विश्वास हो गया था कि उनको कोई भयंकर रोग है, और वे जल्दी ही मर जायंगे, फिर भी वे अपने व्यापार के कामों को बहुत ध्यान से करते थे, और उस तरफ से उनमें कोई उदासीनता नहीं थी। सच तो यह है कि अब उनके जीवन में दो ही काम रह गये थे, एक तो व्यापार की देख-रेख, और दूसरा अपने गुप्त रोग का पता लगाना। व्यापार के क्षेत्र में वे जितने सफल रहे थे, दूसरे क्षेत्र में वे उतने ही असफल रहे।

अगले दिन जब वे डाक्टर भटनागर की रिपोर्ट लेकर डाक्टर लछमणस्वरूप के यहाँ चलने को हुए, तो सामने ही उनका बड़ा साला कृष्णकुमार दिखाई पड़ा। बस इस बात पर वे एकदम आपे से बाहर हो गये, बोले—मैं तो समझता था कि आप तशरीफ ले गये हैं, पर आप तो यहीं डटे हुए हैं। मालूम होता है कि मेरी जान लेकर ही पीछा छोड़ेंगे।

कृष्णकुमार इस प्रकार के संभाषणों का आदी था, फिर भी बोला—लालाजी, यह आपको क्या वहम होगया है, मैं यों तो परसों ही चला जाता, पर राधासुन्दरी की तबियत खराब थी इसलिए रुक गया। इस में और कोई बात नहीं है।

लाला दीनानाथ पहले से अधिक झल्लाकर बोले—राधासुन्दरी की तबियत खराब हो गई, और आप रुक गये, पर मेरी तबियत इतनी खराब है, आपने कभी पूछा भी तो नहीं। मैं जानता हूं, यह सब बहाने हैं, तुम हर वक्त मेरा पीछा कर रहे हो। कभी तुम पीछा करते हो, और कभी तुम्हारा भाई सन्तकुमार। जहां जाता हूं, वहीं जाकर तुम लोग मेरे इलाज में बाधा डालते हो। समझते होगे कि मैं मर जाऊँगा तो सारी जायदाद तुम लोगों को मिल जायगी। कहीं इस

धोखे में न रहना। जो कुछ दे चुका हूं सो दे चुका हूं, अब बन्दा आगे एक कौड़ी भी नहीं देने का.......

कह कर वे एकाएक चल दिये। पर पाँच-सात कदम आगे जाकर फिर लौट आये, और जेब से उस रिपोर्ट को निकालकर दूर से दिखाते हुए बोले—यह देखो, मेरी बीमारी का पता लग गया है। अब मैं जल्दी मरने का नहीं.......

कह कर वे फिर एक बार जल्दी से चले गये। कृष्णकुमार अवाक् होकर उन्हें देखता रहा।

लाला दीनानाथ मोटर पर बैठे, देर तक मोटर को इधर-से-उधर घुमाते रहे। फिर एक जगह पार्क में एकाएक उतर गये, और जब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि कोई उनका पीछा नहीं कर रहा है, तो वे सीधे डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के यहां पहुंचे। ड्राइवर से उन्होंने कहा कि वह कार लेकर दूर जाकर खड़ा हो। उसे तो यह स्थायी हिदायत थी ही कि कोई पूछे तो वह यह न बतावे कि लालाजी कहां गये हैं या कहां हैं। ड्राइवर कभी इस हिदायत के कारण समझ न सका था इस कारण वह समझता था कि यह भी ब्लैक मार्केट से सम्बन्ध रखता होगा। उसे कौतूहल तो होता था, पर छोटा आदमी होने के कारण वह बड़ों की बड़ी बातों से कोई सम्बन्ध रखना उचित नहीं समझता था।

लाला दीनानाथ अपने साले कृष्णकुमार के सामने शेर हो जाते थे, और इस समय भी उसे खरी-खोटी सुनाकर आये थे, पर डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के बँगले में दाखिल होते ही वे भीगी बिल्ली की तरह हो गये। साले को तो डराकर आये थे कि रोग का पता लग गया है, पर यहां तो असलियत छिपनेवाली नहीं थी। डाक्टर भटनागर ने दुगुनी फीस लेने के बावजूद उन्हें करीब-करीब यही कह दिया था कि उनको कोई रोग नहीं है। आखिर उसी रिपोर्ट पर ही तो डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप कुछ कहनेवाले थे। सोचकर उनका मन निराशा से भर

गया, पर वे जहाँ तक हो सके वे अपने को कड़ा करके मरीज़ों में जाकर बैठ गये।

डाक्टर साहब मामूली तौर पर आठ बजे काम शुरू करते थे, पर कोई संगीन केस होता तो बात और थी। अभी आठ बजने में दस मिनट बाकी थे, पर ये दस मिनट उन्हें दस युग मालूम हो रहे थे। उन्होंने एक बार एकत्रित चार-पाँच मरीजों को देख लिया, और यद्यपि सभी उनसे गरीब मालूम होते थे, वे उन सबको अपने से सौभाग्यवान समझ रहे थे। आखिर इन सब के रोग का पता भी लग जायगा, और इनका इलाज भी हो जायगा। पर न उनके रोग का पता लगेगा, और न उसका इलाज होगा। न मालूम कौन-सा षड्यन्त्र रचा गया है कि हजार हाथ-पैर मारने पर भी कुछ बनता नहीं दिखाई पड़ता। जो देखो, वही कहता है कि कोई रोग नहीं है। जब रोग का ही पता नहीं लगता, तो इलाज क्या खाक हो।

लाला दीनानाथ ने सामने लगी हुई क्लाक घड़ी को देखा तो उसमें अभी आठ बजने में सात मिनट रहते थे। उन्होंने सामने आते-जाते हुए एक व्यक्ति को जो कम्पाउण्डर-सा मालूम होता था, बुलाकर पूछा—मुझे डाक्टर साहब से जरा जल्दी मिलना था।

कम्पाउण्डर यद्यपि लाला दीनानाथ के कपड़ों तथा मोटर आदि से प्रभावित था, फिर भी कुछ रुखाई के साथ बोला—वे आठ बजे मिलेंगे।

—मैं उनसे जल्दी मिलना चाहता हूँ : बहुत सीरियस केस है।

कम्पाउण्डर ने ध्यान से और शायद कुछ शक से लालाजी को देखा, और फिर करीब-करीब अव्यक्तिगत भाव से बोला—पुर्जा लिख कर दीजिये।

लालाजी कुछ हिचकिचाये, फिर उन्होंने अपना कार्ड दे दिया।

डाक्टर साहब शायद यों ही आ रहे थे। वे दो मिनट के अन्दर

ही अपने कमरे में आ गये और उन्होंने पहले ही लाला दीनानाथ को बुला भेजा।

डाक्टर साहब ने सबसे पहले वह रिपोर्ट माँगी, और रिपोर्ट देखकर वे बोले—रिपोर्ट में तो कोई खास बात नहीं है। मैं तो इसमें कोई बात नहीं पा रहा हूं।

लालाजी का दिल धक से हुआ, मानों उन्हें मृत्यु-दण्ड सुना दिया गया हो। फिर भी उन्होंने हाथ-पैर मारते हुए कातर स्वर में कहा—मैं आपके यहां बड़ी आशा लेकर आया था, मुझे निराश न कीजिये। रुपये-पैसे की कोई चिन्ता नहीं है।

डाक्टर साहब ने लाला दीनानाथ के कातर चेहरे को देखा, और न मालूम क्यों उन्हें वह बात याद आई कि घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या। साथ-साथ उन्हें यह भी याद आया कि अपने ही घर में कोई उनके साथ सहयोग करने को तैयार नहीं है।

उन्होंने उस रिपोर्ट को मिरगीग्रस्त व्यक्ति की तरह पकड़ लिया, उसमें लिखे हुए शब्द तथा अंक उनकी आँखों के सामने घूम गये। कुछ देर तक दिखाई नहीं पड़ा, फिर उन्होंने कहा मानों उनके अन्दर से कोई और बोल रहा था—अच्छी बात है; फुर्सत में आपकी रिपोर्ट का अध्ययन करूंगा, अभी आप जायँ।

लाला दीनानाथ इतनी ही बात पर फूले नहीं समाये, बोले—हाँ डाक्टर साहब, हाँ डाक्टर साहब, आपसे मुझे बड़ी आशा है—कहकर उन्होंने एक सौ रुपये का नोट डाक्टर साहब की मेज़ पर रख दिया।

डाक्टर साहब बोले—मेरी फीस केवल ३२ रुपये है।

लालाजी हंसकर कृतकृत्य होते हुए बोले—यह तो मैं अपनी खुशी से दे रहा हूं। आप इसे स्वीकार करें।

डाक्टर साहब के अन्दर इस समय दो विपरीत भावनाओं का संग्राम चल रहा था। वे कुछ नहीं बोले, और बिजली की घण्टी

बजाई। तुरन्त एक रोगी भीतर आ गया। लाला दीनानाथ मौका समझकर कुछ मजबूरी से बाहर चले गये।

: ४ :

उसी दिन सन्ध्या समय डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप कहीं न जाकर डाक्टर भटनागर के यहाँ पहुँचे। डाक्टर भटनागर उस समय अपनी लेबारेटरी में किसी मरीज़ के रक्त की जाँच कर रहे थे। उनकी आँखें अणुवीक्षण यन्त्र में लगी हुई थीं, और सामने कागज़ पर कुछ लिखते जाते थे। मुँह से कुछ गिनती-सी कर रहे थे। डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप को देखकर उन्होंने एक दफे सिर हिलाया, और फिर वे गिनती गिनने में, लिखने में और अणुवीक्षण यन्त्र के अन्दर कुछ देखने में लग गये। डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप बगल में कुर्सी पर बैठ गये, और प्रतीक्षा करने लगे कि हाथ में लिया हुआ कार्य समाप्त हो जाय।

दो मिनटों में ही डाक्टर भटनागर खाली हो गये। दोनों लेबारेटरी छोड़कर बगल के कमरे में चले गये, जहाँ चाय आदि मंगाई गई और बातचीत होने लगी। लक्ष्मणस्वरूप ने उस दिन के टेलीफोन की बातचीत का हवाला देते हुए कहा—तुम टेलीफोन पर क्या कह रहे थे कुछ समझ में नहीं आया।

डाक्टर भटनागर ने चाय की एक लम्बी चुस्की लेते हुए कहा—तुम समझते खूब हो, बनते हो, भला इतनी उम्र हो गई और तुम यह नहीं जानते हो कि मरीज़ से पैसा कैसे वसूल किया जाता है?

लक्ष्मणस्वरूप ने भटनागर के कन्धे को छूते हुए कहा—भई मैं सच कहता हूं मैंने कभी यह काम नहीं किया। मैंने तो ईमानदारी से ही मरीजों को देखा है।

—तभी तो तुम घोंचू बने हुए हो, और तुम्हारे साथ के सब लोग कितना आगे निकल गये। जब जमाना ईमानदारी का नहीं है, तो तुम ईमानदार रहकर क्या कर लोगे? पहले के मरीज़ भी और तरीके के होते थे, और चिकित्सक भी और तरीके के। मेरे वालिद वैद्य थे, कभी किसी से फीस नहीं लेते थे, यहां तक कि दवा का दाम भी नहीं लेते थे, पर रोज़ घर पर दस-बीस जगह से सीधे, कपड़े, मिठाइयां, रुपये चले आते थे। जब मरीज अच्छे होते थे तो वे खुशी से सौगात भेजते थे। पर आजकल के मरीज ऐसे हैं कि अच्छा होने पर नाम भी नहीं लेते। फिर लोग क्या करें?

लक्ष्मणस्वरूप ने चाय समाप्त कर प्याले को अन्तिम रूप से मेज़ पर रखते हुए कहा—ईमानदारी का पैसा अच्छा होता है।

क्या खाक अच्छा होता है? मेरी तो समझ में नहीं आता। डाक्टर सक्सेना को देखो, डाक्टरी में जितने प्रकार की बेइमानियां हैं, उन सबको करते हैं, यहां तक कि गाहेबगाहे बने ऐबोरसनिस्ट का काम करते हैं, उनको कौनसा दुःख है? समाज में उनका सम्मान किसी से कम नहीं है, हम लोग एक-एक मोटर रखते हैं, इसी में जीभ निकल जाती है, पर वे तीन-तीन कार रखे हुए हैं। कहते हैं कि मिसेज़ सक्सेना साड़ी के रंग के साथ मिलाकर कार पर बैठती हैं। मुझे तो अफसोस होता है कि मैं पैथोलाजी की लाइन में निकल आया, नहीं तो मैं तुम्हारी तरह जनरल लाइन में होता, तो मन के अरमान निकाल लेता। अब तो मैं उतनी ही कर सकता हूं, जितना तुम लोग मुझसे कराओ।

लक्ष्मणस्वरूप ने प्रतिवाद करते हुए कहा—पर ये बातें ठीक नहीं। जिसे दूसरी तरह से चलना हो, वह और काम अपनाये।

यह तुमने खूब कहा। वकीलों को इस बात की इजाजत है कि वे एक व्यक्ति को खूनी और डाकू जानते हुए भी उसका पक्ष लेकर मगज-पच्ची करें; उन्हें समाज नहीं रोकता। वकील ही समाज के नेता बने

हुए हैं। फिर हम ही लोगों ने कौन-सी कसम खाई है कि ईमानदारी पर जान दें।

दोनों मित्रों में इसी प्रकार तर्क-वितर्क होता रहा। भटनागर ने अपने पक्ष में सारे तर्क दे डाले, और लक्ष्मणस्वरूप ने उनको काटने की कोशिश की। अन्त में भटनागर ने कहा—तुम्हें बहुत अच्छा असामी मिला है, इस लिए मैंने कहा था। क्या नाम है लाला प्रभुदयाल, नहीं-नहीं दीना-नाथ। खैर प्रभुदयाल और दीनानाथ एक ही बात है। उसकी परि-स्थिति बिल्कुल आदर्श है। लड़कों से पटती नहीं, क्योंकि नई शादी की है। नई बीबी से तथा ससुरालवालों से उसे डर है कि वे उसे मार डालना चाहते हैं। रुपये बहुत हैं। तिस पर उसे वहम है कि उसे कोई भयंकर रोग हैं। कई डाक्टरों से निराश होकर तुम्हारे पास आया है। इससे बढ़कर और क्या मामला हो सकता है?—कह कर उसने एकाएक स्वर चढ़ाते हुए कहा—तुम क्या समझते हो कि लक्ष्मी स्वयं तुम्हारे सामने आकर खड़ी हो जायगी? लक्ष्मी ऐसे ही आ सकती है। लाला दीनानाथ की तरह उल्लू का वाहन बनाकर वह आ रही है, और तुम अब चाहो तो उसे ठुकराओ या रखो—कहकर भट-नागर ने घंटी बजाकर नौकर से चाय के सारे बर्तन उठा ले जाने का इशारा किया।

लक्ष्मणस्वरूप ने कहा—मान लो मैं इसके उल्लूपने का फायदा उठाऊं तो कितना ऐंठ सकता हूं, ज्यादा-से-ज्यादा एक या दो हजार, इतने के लिये ईमान का सौदा सस्ता होगा।

डाक्टर भटनागर खुश होता हुआ बोला—अब तुम आये असली बात पर। तुम्हें ईमान का सौदा नामंजूर नहीं है, पर तुम दाम अधिक चाहते हो, और कोई बात नहीं।

—मेरा मतलब तुम नहीं समझे।

—मैं खूब समझ गया, एक तो तुम डरते हो, दूसरा तुम पर ईमान दारी का खब्त सवार है। खैर भाई जैसी तुम्हारी मर्जी, पर जब कभी

ज़रूरत हो तो मुझे याद रखना, और अकेले-अकेले माल मारने की कोशिश न करना।

अन्त तक लक्ष्मणस्वरूप ने भटनागर के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। पर मुंह से स्वीकार न करने पर भी लक्ष्मणस्वरूप कुछ दुविधा में पड़ गये थे, पर अधिक नहीं। बचपन में जो आदर्शवाद का बीज बोया गया था, वह अब भी क्रियाशील था। बड़े लोगों के समाज के विषपूर्ण प्रतिकूल वातावरण के बावजूद उन्होंने अब तक सारा आंधी-पानी झेला था। वे आशा करते थे कि यह वृक्ष मरेगा नहीं। मन-ही-मन उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे लाला दीनानाथ से साफ़-साफ़ कह देंगे कि उनमें कोई रोग नहीं है, और इस कारण वे उनका इलाज नहीं करेंगे क्योंकि इसकी ज़रूरत नहीं है। इस निर्णय पर पहुंचते हुए उन्हें बहुत आनन्द हुआ। डाक्टर भटनागर की बातों को उन्होंने शैतान के द्वारा रखे हुए प्रलोभन के रूप में लिया।

घर पहुंचते ही उनके सामने कई मरीज़ों के काम आ गये, और वे उसमें लग गये। उन्होंने सारे कामों को मामूली से अधिक परिश्रम से किया, जब काम से छुट्टी मिली, तो रात के क़रीब नौ बजे वे घर के अन्दर गये।

: ५ :

जिस समय डाक्टर भटनागर और लक्ष्मणस्वरूप तर्क-वितर्क कर रहे थे, उसी समय वीणा दूसरे कालेज के एक छात्र से एकान्त में बात कर रही थी। इस छात्र का नाम सुरेन्द्र मोहन था, और वह एम० ए० के अन्तिम वर्ष का छात्र था। वीणा कह रही थी—दशहरे की छुट्टियों

में हमारे कालेज की ओर से लड़कियों की एक टोली उत्तर भारत के ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए जा रही है। साथ में दो अध्यापिकायें भी रहेंगी। मेरी बहुत इच्छा है कि उस टोली के साथ जाऊं, पर तुमसे पन्द्रह-बीस दिनों तक अलग रहना पड़ेगा, इस कारण मैं नहीं जा रही हूं।

यद्यपि वीणा ने न जाने का निर्णय दे दिया था, पर सुरेन्द्र मोहन को यह ज्ञात हुये बिना न रहा कि यह उसके लिए बहुत बड़ा त्याग होगा। सुरेन्द्रमोहन सहजात बुद्धि से यह समझता था कि धनी पुत्री के लिए यह त्याग बहुत बड़ा है। उसे कुछ ऐसा भी लग रहा था कि यदि उसे उसके लिए यह त्याग करने दिया गया, तो उससे उसका प्रेम बढ़ेगा नहीं बल्कि घटेगा। सुरेन्द्र मोहन के लिए यह कल्पना असह्य थी। उसने कहा—नहीं-नहीं तुम जाओ, आखिर दस-बीस दिन अलग रहने से क्या आता जाता है। जब जिन्दगी-भर साथ रहना है, तो दस-बीस दिन का अलग रहना क्या होता है?

—नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता, मैं तो तुम्हारे बगैर घूमना भी इंजाय नहीं करूँगी।

सुरेन्द्रमोहन सहसा कुछ बोल न सका, उसका गला भर आया, बोला—मेरी भी यही हालत है, पर मैं यह सोचकर तसल्ली कर लेता हूँ कि दस-बीस दिन की बात है, कोई बात नहीं।

वीणा बोली—हां यह तो है पर मन नहीं मानता।

दोनों देर तक चुप रहे। यद्यपि यह स्थान जहां खड़े होकर वे बातचीत कर रहे थे, शहर से दूर पड़ता था पर यहां से शहर की बस्तियाँ दिखाई दे रही थीं। यद्यपि ये बस्तियाँ दूर थीं, पर गुप्त रूप से मिलने वाले इन प्रेमिकों को ऐसा मालूम हुआ जैसे समाज की अगणित आँखें उनकी तरफ एकटक देख रही थीं। सुरेन्द्रमोहन लौटने के लिए उतना व्याकुल नहीं था, पर वीणा जल्दी घर जाना चाहती थी।

दोनों साथ-साथ शहर की ओर चले। वे हमेशा ऐसा ही करते थे।

जब लोकालय आ जाता था तब वे दो-दो तरफ चले जाते थे। कुछ देर वे चुपचाप चले। मानों आसन्नविच्छेद की छाया उन दोनों पर पड़ चुकी थी। एकाएक सुरेन्द्र मोहन ने कहा—क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूं ?

—नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ? लड़कियों के कालेज की पार्टी है, उसमें तुम्हारा स्थान कैसे हो सकता है ?

सुरेन्द्रमोहन-जैसे उत्तर के लिए तैयार ही था। बोला—मैं साथ थोड़े ही जाना चाहता हूं। यदि मैं अलग चलूं तो ?

पूरी बात वीणा की समझ में नहीं आई, फिर भी उसे पहले-पहल खुशी हुई, पर कुछ गहराई के साथ सोचने पर वह मुरझा गई। बोली—सब को पता लग जायगा। यों ही कई लोग सन्देह करते हैं। कहीं मिसेज़ अग्रवाल को जो हमारे साथ देखभाल के लिए जा रही हैं मालूम हो गया तो अनर्थ ही हो जायगा। उनको तो ऐसी बातों से इतनी चिढ़ है कि वे ऐसी बातों के लिए हवा को सूंघती रहती हैं। कई लड़कियों को वह परेशान कर चुकी हैं।

—तो यहां कौन डर है ? जब दो दिन बाद शादी ही करनी है, तो मिसेज़ अग्रवाल ही क्या कर लेगी, और कोई ही क्या कर लेगा ?

—बात तो ठीक है पर अभी से झगड़े पैदा करने से कोई फायदा नहीं। मम्मी तो किसी भी तरह इस शादी में राजी नहीं होगी, उनसे तो बाकायदा झगड़ा करना पड़ेगा। पापा राजी हो जायंगे, पर मम्मी के सामने अपना स्वतन्त्र मत देते हुए डरेंगे।

—सुरेन्द्र मोहन इस सम्बन्ध में सारी परिस्थिति को जानता था। दुःखी-सा होकर बोला—तो फिर जाने दिया जाय....

—नहीं जाने क्यों दिया जायगा कुछ सोचा जाय।

—मेरे पास पैसे भी नहीं हैं, मैं ने तो यों ही बिना समझे बूझे कह दिया था।

वीणा यह जानती थी कि सुरेन्द्र मोहन मुश्किल से गुजारा कर

पाता है। इस भ्रमण में साथ देना उसके लिए सम्भव नहीं था। वीणा बोली—खैर यह कोई बड़ी बात नहीं है, मान लो मैं तुम्हें सौ दो सौ उधार दे दूं तो कोई बात नहीं।

वीणा ने उधार का शब्द इस कारण इस्तेमाल किया कि वह जानती थी कि इस सम्बन्ध में सुरेन्द्रमोहन बड़ा अनुभूतिशील है, है, और उसने आज तक कभी भी वीणा से रुपये लेना स्वीकार नहीं किया था। यदि वह स्वीकार करता तो एकमात्र सम्भावना यह थी कि उधार के रूप में ही स्वीकार करेगा।

पर सुरेन्द्रमोहन ने सारी बात को समाप्त-सा करते हुए कहा—जब जाना ही नहीं है, तब इस सम्बन्ध मगजपच्ची क्यों करें?

वीणा चलते-चलते रुक गई, बोली—इसके माने यह हुए कि तुम नहीं चाहते कि मैं जाऊँ?

वीणा के इस अजीब अभिमान-भरे लहजे से सुरेन्द्रमोहन को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर वह समझ गया कि वीणा इस भ्रमण में जाना चाहती है, और साथ ही उसे ले जाना चाहती है, इसी कारण यह झल्लाहट है, बोला—तुम तो नाराज़ हो गई। अभी तो तुम ही कह रही थी कि मिसेज़ अग्रवाल के कारण मेरा जाना सम्भव नहीं है।

वीणा ने अपनी झल्लाहट को रास्ता पाकर मिसेज़ अग्रवाल पर उतारते हुए कहा—मिसेज़ अग्रवाल जायें चूल्हे में। अब तुम यह बताओ कि कहीं रुपये का बहाना बनाकर जाने से इनकार तो नहीं करोगे?

सुरेन्द्र मोहन पास आता हुआ बोला—रानी! जब तुम इस तरह से कहोगी, तो मैं नरक में जाने से भी इनकार नहीं कर सकता।

—तो मेरे साथ जाना नरक में जाना हुआ?—मुस्कराकर वीणा ने कहा, और फिर दोनों साथ-साथ चलने लगे।

सुरेन्द्र मोहन ने भी मुस्कराकर उसी लहजे में कहा—नारी नरक का द्वार है, ऐसा श्री शंकराचार्य का कथन है, यह तुम नहीं जानती?

दोनों इसी प्रकार बातचीत करते हुए आगे बढ़े। यह तय हो गया कि सुरेन्द्र मोहन अलग रह कर लड़कियों की उस पार्टी के साथ चलेगा, और यद्यपि किसी ने इस विषय का उल्लेख नहीं किया, पर यह भी मान लिया गया कि खर्च का प्रबन्ध वीणा करेगी। थोड़ी ही देर में लोकालय आ गया, और वे एक-दूसरे संक्षिप्त रूप से गले मिल कर अलग हो गये, और दोनों दो तरफ चलने लगे, यद्यपि दोनों को जाना एक ही तरफ था।

वीणा ने जिद में आकर सुरेन्द्र मोहन को कह तो दिया कि वह साथ में चले, और उसके सारे खर्च का प्रबन्ध वह करेगी, फिर भी जब उसने गहराई के साथ सोचा तो उसे कुछ शंका-सी मालूम हुई। मिसेज अग्रवाल की वह अवज्ञा कर सकती थी, सभी खाती-पीती धनी छात्राएं अपनी अध्यापिकाओं को अवज्ञा की दृष्टि से देखा करती थीं, इसमें कोई नई बात नहीं थी। फिर वह अपनी बुद्धि पर विश्वास करती थी। वह समझती थी कि मिसेज़ अग्रवाल तो बिलकुल बुद्धू थीं, और उन्हें आसानी से बेवकूफ बनाया जा सकता है। पर असली स्याऊं का ठौर तो रुपयों का प्राप्त करना था। दस-बीस रुपयों की बात नहीं थी, बल्कि दोनों को मिलाकर खर्च सात आठ सौ से कम बैठने वाला नहीं था। इतने रुपये कभी उसने पापा से नहीं माँगे थे। इस कारण वह चिन्तित हो गई। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करे।

इसी उधेड़बुन में वह घर पहुंची। उसने सोचा पहले इस सम्बन्ध में मम्मी से बातचीत की जाय। यह तो निश्चित था कि मम्मी के विरोध करने पर उसे पापा से कुछ मिलने की आशा नहीं थी। वह सत्यभामा के पास पहुंची और सारा विषय जहां तक कि उसके अपने जाने का सम्बन्ध था खोलकर बताया। सत्यभामा ने इस विषय में कोई दिलचस्पी नहीं दिखलाई। बोली—तेरे पापा तो आजकल बड़े चिड़चिड़े हो रहे हैं, विकास को ही रुपये भेजने में आनाकानी करते हैं,

तू कह कर देख मुझे तो कोई उम्मीद नहीं है।

वीणा ने दुलार-भरे शब्दों में कहा—पर मम्मी ऐसा मौका तो रोज़-रोज़ नहीं आता।

—यह मैं कब कह रही हूं कि ऐसे मौके रोज आते हैं, पर तेरे पापा मानें तब न। यह देख विकास की चिट्ठी, कोई वहां उत्सव होने वाला है या क्या बात है, उसने ५० रुपये फ़ालतू मंगाये हैं, मैंने सवेरे इस पत्र को दिखाया तो वे एक दम चिढ़ गये। बोले—लड़के से खर्च कम करने को कहो, मैं यह सब कार्निवल-वार्निवल कुछ नहीं जानता। मैं उसके लिये डाका डालने नहीं जाऊंगा।—कह कर सत्यभामा ने विकास का पत्र वीणा के हाथ में दिया।

वीणा ने सरसरी तौर पर पत्र को पढ़ लिया। मां की बात सुन और पत्र पढ़कर वह समझ गई कि रुपये मिलना बहुत मुश्किल है। मम्मी को उसने केवल दो सौ रुपये की बात कही थी। वह सोचती थी कि मम्मी से केवल इतना ही कहा जाय पर मांगते समय पापा से छः सौ की बात कह दी जायगी। पर यहां तो सौ की भी गुंजाइश नहीं मालूम होती थी। उसे विकास भैया पर बहुत क्रोध आया। आखिर वह अपने को समझता क्या है? वही पिता की सारी कमाई खींच लेता है, और किसी के लिये कुछ नहीं बचता। और भी तो छात्र हैं, पर वे तो इस प्रकार महीने में तीन सौ-चार सौ रुपये नहीं मंगाते। मम्मी भी उसी की सिफारिश करती है जैसे वही घर की एक-मात्र सन्तान हो। उसे कोई नई साड़ी लिये कितने दिन हो गये। कितनी नई डिज़ाइन की साड़ियां निकल रही हैं, पर वह तो एक भी नहीं खरीद पाई।

उस ने सत्यभामा से कहा—तो तुम ही मुझे दो सौ रुपये दे दो—कह कर उस ने व्याकुल दृष्टि से माता की ओर देखा।

—मेरे पास दो सौ कहां से आये? मैं तो बड़ी कठिनाई से घर का काम-काज चला रही हूं। कई पार्टियों में जा चुकी, अब पार्टी देना

बिल्कुल जरूरी हो गया है, पर नहीं दे पा रही हूँ। तेरे पापा कभी कह देते हैं बीमा कम्पनी का पैसा देना है, तो कभी कह देते हैं मोटर का इनस्टालमेंट देना है, इस प्रकार से बात टाल देते हैं। तुम कह कर देखो न बेटी, मेरे पास रुपये उपये कुछ नहीं है।

यह बिल्कुल सीधा जवाब था, इस पर कुछ कहना सम्भव नहीं था।

: ६ :

जिस समय अपनी रिपोर्ट लेकर लाला दीनानाथ घर से निकल गये, उस समय कृष्णकुमार देर तक खड़े-खड़े उनकी बातों पर विचार करता रहा। सचमुच उन लोगों ने अपनी बहन का ब्याह केवल धन देखकर किया था, नहीं तो लाला दीनानाथ तो कई बच्चों के बाप थे, यहां तक कि उनके नाती-पोते हो चुके थे। उसे यह आशा थी कि विवाह के उपलक्ष्य में जो दस हजार रुपये उसने लिए थे, उसके अलावा भी धन उसके हाथ लगेगा। विवाह के बाद कुछ दिनों तक रिश्ता-नाता ऐसे चला कि यह आशा पूरी होती दिखाई पड़ी, पर एकाएक न मालूम क्या हो गया कि तब से लाला दीनानाथ बिल्कुल फिरंट हो गये। उन्हें यह शक हो गया कि राधासुन्दरी तथा उस के भाई उसे मारने का षड़यंत्र कर रहे हैं। पहले तो कृष्णकुमार ने इस शक के बावजूद यह चेष्टा की कि जीजाजी के मनसे यह संदेह दूर हो, पर वहां तो यह हालत रही कि मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।

कृष्णकुमार ने तथा उसकी सलाह पर सन्तकुमार ने तीन-चार महीनों तक इधर का रास्ता ही नहीं लिया, फिर भी जब कृष्णकुमार आया तो लाला दीनानाथ उस पर बरस पड़े। कहीं कुछ शक करने लगे

तो कहीं कुछ। कृष्णकुमार इन बातों से इतना परेशान हुआ कि वह लाला दीनानाथ के सामने पड़ने से बचने लगा। फिर भी यदा-कदा सामना हो ही जाता, और झिड़कियां सुनने को मिलतीं।

यद्यपि कृष्णकुमार ने रुपया लेकर एक तरह से अपनी बहन को बेच दिया था, पर वह इन दिनों ऐसा समझने लगा था मानों वह अपनी बहन के लिये कोई बड़ा भारी त्याग कर रहा हो। वह लाला दीनानाथ से तो कुछ कह नहीं पाया, तैश में अपनी बहन के पास पहुंचा। राधा सुन्दरी उस समय एक फिल्म-पत्रिका पढ़ रही थी, जिसे कृष्णकुमार ने लालाजी से चुराकर उसे पहुंचाया था। लालाजी स्वयं न तो कभी सिनेमा जाते थे और न फ़िल्मों के सम्बन्ध में कुछ जानते थे। पर उनकी यह धारणा थी कि फिल्म देखनेवाले सभी लोग बुरे होते हैं। इसी लिये वह अपनी स्त्री को इस की हवा भी लगने देना नहीं चाहते थे। तरुणी स्त्री का वृद्ध पति इस प्रकार चरित्र-निर्माण की चेष्टा नहीं करेगा, तो कौन करेगा।

कृष्णकुमार ने बिना किसी भूमिका के बहन से कहा—लाला जी तो अब बिल्कुल ही आपे से बाहर रहते हैं।

यह राधासुन्दरी के लिये कोई समाचार नहीं था। उसने कोई उत्साह दिखाये बिना कहा—क्या कोई बात हो गई?

—बात कुछ नहीं हुई। वहम की दवा कौन करे? मैं उधर से आ रहा था, वे इधर से जा रहे थे कि मुझे रोककर कहने लगे कि अब वे जल्दी नहीं मरने के, क्योंकि उनके रोग का पता लग गया है। इसी पर क्या-क्या सुना गये। भला बताओ कि मुझे इन बातों से क्या मतलब? मैं यह कब चाहता हूँ कि वे मर जायं।

राधा सुन्दरी ने पहले से भी कम उत्साह दिखाते हुए कहा—आजकल वे ऐसे ही बोलते हैं।

यद्यपि राधासुन्दरी ने अपने भाई को बैठने तक के लिये नहीं कहा था, फिर भी कृष्णकुमार स्वयं ही एक कुर्सी पर बैठ गया। बोला—

ऐसे तो नहीं चल सकता।

—कैसे नहीं चल सकता ?

—यही कि वे हर समय हमसे इस प्रकार बोलें, और हम सहते जायं, यह तो नहीं हो सकता। मैंने तुम्हारे कारण बहुत बर्दाश्त किया, पर अब तो सहा नहीं जाता।

राधा सुन्दरी ने इसके उत्तर में कुछ भी नहीं कहा। वह वस्तु-स्थिति से परिचित थी। बचपन में ही मां-बाप मर गये थे। कृष्णकुमार ने ही उसका पालन-पोषण किया था। बड़े भाई के लिये उसके मन में पिता की तरह सम्मान था। शायद पिता के प्रति ऐसा ही सम्मान होता है। पर जब से भाई ने शादी की, तब से उसके साथ कृष्णकुमार का रिश्ता बदल गया। भाभी उसे एक बिना वेतन की नौकरानी समझती थी। इससे भी बुरो। पहले-पहल तो कृष्णकुमार की तरफ से चुपके-चुपके कुछ सहानुभूति रहती थी, पत्नी की आंख बचाकर उसे कुछ पैसे आदि भी मिल जाते थे, पर धीरे-धीरे यह छिपी सहानुभूति भी जाती रही। भाभी तो सन्तकुमार से भी दुर्व्यवहार करती थी। पर सन्तकुमार एक तो मर्द था, दूसरे अधिकांश समय घर के बाहर रहता था, इसके अलावा चीखने-चिल्लाने का आदी था, इस कारण उस पर भाभी का कुछ विशेष सिक्का नहीं जमा। इसका नतीजा यह हुआ था कि भाभी ने इसका सारा बदला उससे निकाला था और उसकी हालत दिन-बदिन बिगड़ती ही गई थी।

यह तो हालत थी जिसमें वह पली थी। जब भाभी के बच्चे होने लगे तब उनको पालने-पोसने का सारा काम उसी पर पड़ने लगा। रात को भी छुट्टी नहीं मिलती थी। दूध गरम करने के लिये तथा अन्य कार्यों के लिए अब रात में भी बुलाई जाने लगी। ऐसे समय में कृष्णकुमार ने एक दिन यह कहा कि राधा की शादी हो जानी चाहिए। बात यह है कि किसी ने कृष्णकुमार को इस सम्बन्ध में कुछ ताना-सा दिया था, तभी उसे यह बात याद आई थी। पर कृष्णकुमार के इस प्रस्ताव को

उसकी पत्नी ने वेटो कर दिया था। उसने साफ-साफ यह चेतावनी दे दी थी कि यदि राधा चली जायगी, तो उसके लिये गृहस्थी संभालना असम्भव होगा। यह चेतावनी कृष्णकुमार के लिए एक आज्ञा-सी थी।

राधा देखने-सुनने में अच्छी थी, और घर के सारे काम-काज करने पर भी उसका सौन्दर्य म्लान नहीं हुआ था। कृष्णकुमार चाहते हुए भी शादी की बात को आगे न बढ़ा सके थे। इतने में बिना कोशिश किये लाला दीनानाथ की तरफ से सन्देशवाहक आया। एक साथ हजारों रुपये मिलेंगे जानकर कृष्णकुमार की पत्नी ने अब की बार कोई आपत्ति नहीं की। उसी ने रकम को पाँच हजार से दस हजार करवाया। पति से यह भी वायदा ले लिया कि इस रुपये में सन्तकुमार का कोई हिस्सा नहीं होगा। कृष्णकुमार को यह डर था कि अब सन्तकुमार कालेज में पढ़ता है, कहीं हिस्सा न मांग बैठे, पर यह मामला किसी तरह टलता चला गया था। कृष्णकुमार समझने लगा था कि अब यह मामला दब गया है। सन्तकुमार ने कभी इसका जिक्र नहीं किया था।

तो यह तो सारी परिस्थिति थी। जब राधा सुन्दरी की शादी हुई, तो वह ऐसी मानसिक अवस्था में थी कि यदि उसकी शादी एक कोढ़ी से भी कर दी जाती तो वह इसे मुक्ति समझती। लाला दीनानाथ तो खैर बहुत अच्छे आदमी थे, और उसके आराम का पूरा ख्याल रखते थे। लोग चाहे उसके सम्बन्ध में कुछ भी समझते हों, वह स्वयं यही समझती थी कि उसकी ईश्वर ने सुन ली। मजे में बैठकर अच्छा खाना और पहनना मिलता है, दो-चार नौकर-नौकरानियां हैं, सबसे बड़ी बात यह है कि भाभी से छुट्टी मिली, इस कारण वह पहले की तुलना में बहुत सुखी थी। कृष्णकुमार के प्रति उसके मन में न तो कोई द्वेष था, और न प्रेम।

जब राधा सुन्दरी देर तक कुछ नहीं बोली, तो कृष्णकुमार ने फिर कहा—ऐसे कैसे काम चलेगा ?

राधा सुन्दरी ने तड़ाक से उत्तर दिया—तो फिर भैया, तुम न

आया करो। मैं उन्हें समझा तो सकती नहीं। वे मुझ पर भी कुछ-न-कुछ शक रखते हैं, पर व्यवहार में इसे प्रकट नहीं होने देते।

कृष्णकुमार ऐसे उत्तर की आशा नहीं करता था। वह कुछ देर तक अवाक रहा, फिर बोला—भला यह कैसे हो सकता है कि भाई बहन के पास न आये।

राधा सुन्दरी मानो आज अन्तिम सीमा तक जाने को तैयार थी, बोली—भैया, दुनिया में सभी कुछ हो रहा है। मजबूरी का दूसरा नाम सब्र है।

कृष्णकुमार को इस बात से बड़ी निराशा हुई। वह तो मन में यह प्रस्ताव लेकर आया था कि कुछ दिन सपरिवार यहां आकर रहे। उसकी पत्नी रूपा बहुत दिनों से इसके लिये जिद्द कर रही थी। वह कहती थी—बताते हो कि तुम्हारी बहन राजपाट का सुख भोग रही है, मैं भी तो देख आऊं कि कैसी क्या बात है। तुम्हारी बदौलत तो मुझे कभी सुख नहीं मिला, तुम्हारी बहन की बदौलत ही कुछ दिन सुख मिल जाय।

कृष्णकुमार ने पत्नी के इस प्रस्ताव का इस कारण स्वागत किया था कि वह समझता कि रूपा यदि यहां आकर रहेगी, तो कुछ-न-कुछ लेकर ही विदा होगी। वह जब भी आकर लाला दीनानाथ के घर के ऐश्वर्य को देखता था, तो वह यही सोचता था कि इन चीज़ों में से कुछ उसे मिल जाय तो बड़ा अच्छा रहे। बढ़िया-से-बढ़िया सोफासेट, अच्छी लकड़ी के सुन्दर सुरुचिपूर्ण असबाब, गद्दे, तकिये, मसहरियां। जिधर भी आँख उठाकर देखता, उसकी जीभ पर पानी आ जाता। इन सामानों को देखकर उसके मन के किसी निभृत कोने में जो थोड़ा-बहुत पश्चात्ताप था कि उसने बहन के साथ अन्याय किया, वह तो जाता ही रहा था, उलटा उसके मन में यह भावना उत्पन्न हुई थी कि उसने अपनी बहन के साथ बड़ा भारी एहसान किया। इसके साथ-ही-साथ स्वाभाविक रूप से यह धारणा बन गई थी कि बहन को यह

एहसान मानना चाहिए, और समय-समय पर भाई को कुछ-न-कुछ देना चाहिये। यदि खुल्लमखुल्ला नहीं दे सकती तो चोरी से ही दे। आखिर यहां इतना सामान है। वह दो-एक चीज़ ले जायगा तो किसे पता लगेगा।

पर राधा सुन्दरी से ये आशायें पूर्ण नहीं हुई थीं। वह तो इस सम्बन्ध में दिये गये स्पष्ट इशारों को भी समझती नहीं थी। इसी कारण इस रंगमंच पर रूपा को लाने की आवश्यकता थी। रूपा की बुद्धि पर उसे पूरा भरोसा था। वह एक बार यहां आ जाय तो सब काम बन सकता था।

कृष्णकुमार ने आज स्पष्ट रूप से कहा—तुम्हारी तबियत ठीक नहीं रहती जानकर तुम्हारी भाभी यहां आकर तुम्हारी देख-रेख करना चाहती है। मैं भी तुम्हारे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत चिन्तित हूं। मैं तो सोचता हूं कि दो-एक दिन में ही शुभ घड़ी देखकर उन लोगों को ले आऊँ...

भाभी यहां आ रही है सुन कर राधा सुन्दरी बहुत घबरा गई। जिसने सात वर्ष तक उसे अपनी चक्की में पीसा था, वह फिर उसके पास आयेगी यह सुनकर उसे पहले तो भय तथा फिर क्रोध हुआ। मुंह से बोली—लालाजी से आपने पूछ लिया है?

—इसमें पूछना क्या है, भाई बहन के पास आयेगा, इसमें पूछना क्या है? लालाजी यह थोड़े ही कहेंगे कि तुम्हारे पास तुम्हारा भाई या भाभी न आवें।

—कहेंगे क्या वे तो कहते ही हैं।

—तुम्हारी राय होगी तो वे ना नहीं कर सकेंगे।

—नहीं मैं ऐसा नहीं मानती—वह और भी कुछ कहना चाहती थी, पर रुक गई।

कृष्णकुमार ने देखा ऐसे कि दाल नहीं गलेगी, बोला— देखो राधा, मैं जानता हूं कि तुम्हरी भाभी के साथ तुम्हारी कभी नहीं पटी। यह

मैं नहीं कहता कि दोष तुम्हारा ही था, पर ताली एक हाथ से नहीं बजती। इसी लिए मैं तो यह कहता हूं कि पुरानी बातों को जाने दो। ईश्वर ने तुम्हें इस लायक बनाया है कि तुम हम लोगों की मदद कर सकती हो। यदि तुम्हारी भाभी यहां आकर कुछ दिनों तक आराम करना चाहती है तो इसमें तुम्हें क्या एतराज हो सकता है?—कहकर उसने स्वर नीचा कर लिया, और कुर्सी को बहन के पास लाते हुए बोला—लालाजी तो बूढ़े हो गये हैं, न मालूम कब हो जाय, तब तो तुम्हें लौट कर हमारे साथ रहना पड़ेगा, इसी लिए मेरी यह सलाह है कि तुम भाभी से सुलह कर लो।

राधा सुन्दरी ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—मेरा किसी से झगड़ा नहीं है, पर इस मकान में लालाजी का ही हुक्म चलेगा। मैं उनकी एक नौकरानी की तरह हूं, वे इज्जत देते हैं यह उनकी बड़ाई है। पर मैं उनसे कुछ नहीं कह सकती, वे जैसा चाहेंगे वैसा करेंगे। आप उन्हीं से पूछिये।

कृष्णकुमार कुछ कहने जा रहा था, पर इतने में उसकी आंख दरवाजे की तरफ पड़ी तो उसकी ऐसी हालत हुई कि काटो तो लहू नहीं। लाला जी खड़े थे, और क्या पता सारी बात सुन चुके हों। लाला जी उधर से सामने आ गये, बोले—कृष्णकुमार मैं तुम्हें जितना कमीना समझता था, तुम उससे भी ज्यादा कमीने हो। तुम मेरे ही घर में मेरी मृत्यु-कामना कर रहे हो और मेरी मृत्यु का डर दिखाकर मेरी स्त्री पर रोब गांठना चाहते हो। जी तो यही चाहता है कि नौकरों से पकड़कर तुम्हें यहां से निकलवा दूं, पर तुम्हारी बहन की शराफत का ख्याल आता है। आज मैं समझ गया कि मैं राधा पर खामखाह शक करता था। अब सीधे से यहां से निकल जाओ, और कभी इस घर में पैर न रखना। मुझे तुम्हारे जैसे लोगों से रिश्ता नहीं रखना है।

कृष्णकुमार के पैरों तले से जमीन खिसक गई। उसकी आंखों

के सामने अंधेरा छा गया। वह क्या-क्या स्वप्न देख रहा था और आज यह क्या हो गया? सबसे अधिक डर उसे इस बात का हुआ कि रूपा क्या कहेगी। रूपा कुछ सुनेगी नहीं, और यही कहेगी कि उसने मूर्खता से सारा बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। उसे कुछ सूझा नहीं कि क्या करे, और जाकर लाला दीनानाथ के पैरों पर गिर पड़ा, और पागलों की तरह रोने लगा। रोता हुआ बोला—लालाजी आप गलत समझ गये मैं तो बहन को सारी ऊंच-नीच समझा रहा था। हम भला आपकी मृत्यु क्यों चाहेंगे? हम क्या इस बात को नहीं जानते कि आपकी ज़िन्दगी से हमें सैकड़ों लाभ हैं, फिर हम क्यों ऐसी बात चाहेंगे?

लालाजी बड़े उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। दूसरी शादी के बाद से ही उनकी उदारता कुछ घटी थी और वे कुछ शक्की हो गये थे। कृष्णकुमार को अपने पैरों पर गिरा हुआ देखकर उन्हें तरस आ गया, और वे बोले—अच्छी बात है। मैं तुम्हें क्षमा करता हूं, पर ऐसी बात मुँह पर न लाना। यह सम्भव है कि मैं अभी चालीस साल तक जीऊँ, और तुम चार साल भी न पूरे कर पाओ, और राधा के तुम्हारे आश्रय में जाने के बजाय सम्भव है कि तुम्हारे बाल बच्चों को मेरे आश्रय में आना पड़े। मरना जीना सब उसी ईश्वर के हाथ है।

लालाजी ने क्षमा करने को तो कर दिया पर आगे कुछ नहीं बोले। इस लिए कृष्णकुमार ने अपनी पूरी जीत नहीं समझी और पैर छोड़कर अलग हो जाने पर भी सिर नीचा किये खड़ा रहा। बोला—यों तो आपके यहां दासी नौकरानी सब हैं, पर बहन की तबियत को देखकर मेरी यह इच्छा थी कि राधा सुन्दरी की भाभी यहां आकर कुछ दिनों तक इसकी देख-रेख करे तो अच्छा रहे—कह कर उसने एक बार सिर उठाकर लालाजी को देखते हुए फिर सिर नीचा कर लिया।

लालाजी ने कहा—देखो कृष्णकुमार घर, के अन्दर के मामले में तुम्हारी बहन ही सब कुछ है। तुम उन्हें राजी कर लो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।

कृष्णकुमार ने कहा—भला राधा कभी इस मामले में आपत्ति कर सकती है। वह तो सारे मामले को आप ही की राय पर छोड़ रही थी। अब आपकी राय मिल गई, तो फिर और किस बात की जरूरत है।

लालाजी बोले—यह सब तो ठीक है, पर भाभीजी को इधर भेज दो, वह आकर इनसे सम्मति प्राप्त कर लें, तो सब काम ठीक हो जायेगा।

—मैं ही उनकी तरफ से सम्मति मांगने आया था।

लालाजी कुछ अधैर्य होकर बोले—वह सब तो ठीक ही है, पर जैसा मैंने बताया, ढंग वही है।

कृष्णकुमार समझ गया कि अब इस बात पर कोई तर्क नहीं चलेगा। वह चुप हो गया और धीरे-धीरे कमरे में से बाहर जाने लगा। उसे पुकारते हुए लालाजी ने कहा—हां एक बात सुनते जाओ। तुम्हारी बहन को किसी दिन तुम्हारे या उसकी भाभी के आश्रय में जीना नहीं पड़ेगा, इसकी पक्की व्यवस्था मैं कर लूंगा।

कृष्णकुमार कुछ कहना चाहता था, पर लालाजी का आज्ञासूलक संकेत पाकर वह कमरे से निकल गया।

: ७ :

उस दिन सन्ध्या के समय जब वीणा सुरेन्द्रमोहन से मिलकर घर पर लौटी, और माताजी से मिलकर रुपयों के सम्बन्ध में निराश हो गई, तो वह डाक्टर साहब के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। ज्यों

ही डाक्टर साहब काल अटैन्ड कर घर लौटे, त्यों ही वीणा ने अपनी बात छेड़ दी। सारी बातों को सुनकर डाक्टर साहब गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—ऐसे दस-पन्द्रह दिनों में सारे उत्तर भारत का भ्रमण करने से क्या शिक्षा मिलेगी? एक सारनाथ में ही महीनों देखने का सामान है। यह तो एक तरह से सैर ही हो जायेगी, और सो भी अच्छी नहीं। मेरी तो यह राय है कि इस प्रकार चार सौ रुपये फूंकने के बजाय तुम चार-छः किताबें खरीदकर पढ़ो, तो ज्यादा शिक्षा मिलेगी।

वीणा ने उलाहना-भरे शब्दों में कहा—आप ही तो कहा करते थे कि भ्रमण के बिना शिक्षा सम्पूर्ण नहीं होती।

—मैं अब भी कहता हूं, पर भ्रमण के माने यह थोड़े ही हैं कि आज काशी है, तो कल पटना है, और परसों गया है। भ्रमण से मेरा मतलब वहां के लोगों की जानकारी प्राप्त करना, उनकी रीति-रिवाजों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस तरह एक-एक जगह को उंगली से छूकर चल देने से कोई तजुर्बा थोड़े ही होता है।

वीणा ने अपने पक्ष के समर्थन में सभी तरह के तर्क दिये, बाप और बेटी में अच्छी-खासी बहस हो गई। डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप इस बात को जानते थे कि वीणा जो कुछ कह रही है, वह सही है, पर खर्च के कारण वे उल्टा तर्क कर रहे थे। ये चार सौ रुपये उन के लिये कोई अधिक नहीं थे, पर वे घबड़ाते थे कि यह तो आरम्भ-मात्र है, यदि इस में प्रोत्साहन दिया गया, तो आगे फिर बराबर इस प्रकार के टूर होते रहेंगे। इसके अतिरिक्त उनको इस बात की फिक्र थी कि कहीं विकास को इसका पता लग गया, तो वह अपना खर्च और बढ़ायेगा। उनको बड़ा दुःख हुआ कि वीणा की बात को इस प्रकार ठुकराना पड़ रहा है, पर आगे की बात सोचकर उन्होंने दिल कड़ा करते हुए कहा—बेटी, जिद मत करो, इस प्रकार की सैर से कुछ नहीं आता-जाता।

—तो आप इसे सैर ही समझिये, एजूकेशनल टूर न मानिये। मैं तो आज तक कभी सैर में नहीं गई।—कहकर जब उसने देखा कि फिर भी डाक्टर साहब नहीं पसीज रहे हैं, तो बोली—कितनी ही लड़कियां जा रही हैं। उनमें से तो कई ऐसी हैं, जो बहुत गरीब घर की हैं।

अन्तिम शब्द डाक्टर साहब को बहुत चुभ गये। उन्हें यह बहुत बुरा लगा कि सत्यभामा की तरह वीणा भी उन्हें सूम समझ रही है। उसे यह नहीं पता था कि केवल मामूली खर्च में ही महीने में २५०० रुपये निकल जाते हैं। इस पर जीवन-बीमा तथा कार की किश्तें हैं। वे झुंझलाकर बोले—तुम यही समझ रही हो कि पैसे बचाने के लिए मैं ऐसी बात कह रहा हूं, पर यह गलत है।

इस पर वीणा ने कुछ नहीं कहा। उस ने एक बार डाक्टर साहब की तरफ करुण नेत्रों से देखा, और फिर वहां से उठकर धीरे-धीरे चली गई। यदि वीणा उन्हें कुछ भला-बुरा कहती, सत्यभामा की तरह उन पर बरस पड़ती, तो उन्हें उतना बुरा नहीं लगता जितना कि उस का इस प्रकार उठ जाना बुरा लगा। उन्हें अपने ऊपर कुछ तरस-सा आया कि दो ही बच्चे हैं, उन्हें भी वे सन्तुष्ट नहीं कर पाते। अपने मन को यह तर्क देते हुए उन्हें बुरा लगा कि वे जब छात्र थे तो वे बहुत कम पैसे में गुजारा कर लेते थे। वह युग ही और था। आज कल तो सभी छात्र ऐसे हैं, फिर इन दोनों को ही दोष क्यों दिया जाय।

इसी प्रकार के सोच-विचार में वे पड़े हुए थे कि कोई टेलीफोन आया और वे काम में व्यस्त हो गये। जब रात को खाना खाकर वे सोने लगे, तब भी उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। एकाएक उन्हें डाक्टर भटनागर की बातें याद आ गईं—'घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या ?' पर उन्होंने कमजोरी के हाथों आत्म-समर्पण न करने का फिर से निश्चय कर लिया। दूसरे डाक्टर जो चाहे सो करें, वे तो ईमानदारी

से ही पैसे लेंगे। अब तो उनकी प्रेक्टिस बहुत अच्छी हो गई है, रोगियों को ठगने के बजाय वे अपनी फीस बढ़ाकर ३२ से ६४ क्यों न कर दें। यदि ऐसा करने पर अपने दो तिहाई रोगी भी हाथ में रह जाते हैं, तो मुनाफा ही रहता है। हां वे ऐसा ही करेंगे, सोचकर वे सोने लगे, तो लाला दीनानाथ का चेहरा उन के सामने घूमने लगा। उसे बलपूर्वक अपनी कल्पना से निकालकर वे सो गये।

: ८ :

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप बहुत गहरी नींद में सो रहे थे, इतने में बिजली का काल बैल बड़े जोरों से बोलने लगा। यह कोई नई बात नहीं थी। ऐसा तो करीब-करीब रोज ही होता था। सत्यभामा उससे बहुत चिढ़ती थी, पर मजबूरी थी। जाड़े की रात थी, दरबान लिहाफ छोड़कर जल्दी से भागा। डाक्टर साहब अभी सो ही रहे थे, पर सत्यभामा जग चुकी थी।

दरबान ने आकर बताया कि बाहर कार लेकर लोग आये हुए हैं, कोई बहुत सख्त बीमार है, और अभी डाक्टर साहब को ले जाना चाहते हैं। डाक्टर साहब जगाये गए। साथ-ही-साथ चाय का प्याला तैयार हो गया, और वे ओवरकोट चढ़ाकर चल दिये। जब वे रात के समय कहीं जाते थे, तो उनका दरवान बाक्स लेकर उनके साथ-साथ जाता था। यदि रोगी की तरफ से कार नहीं आती थी, तो वे अपनी कार पर ही जाते थे, पर यदि कार आती थी तो वे दोनों उसी पर सवार हो जाते थे।

जो लोग बुलाने आये थे उनमें से कोई भी परिचित नहीं था, पर

डाक्टर को इस बात से क्या ? इससे तो बल्कि उसको और खुशी ही होती है कि नये लोगों में उसकी पहुंच हो रही है। जो दो साहब आये थे, वे भाई-भाई मालूम होते थे, और घबड़ाये हुए जान पड़ते थे। यह भी कोई अजीब बात नहीं थी। जो लोग इस प्रकार रात को बुलाने आते थे, वे इसी प्रकार घबड़ाये हुए होते थे।

डाक्टर साहब ने इतमीनान से एक सिगरेट सुलगाई, और पूछा—क्या तकलीफ है ?

सामने की सीट पर बैठे हुए व्यक्तियों की ओर से एक क्षण तक कोई उत्तर नहीं आया। फिर जो छोटा भाई मालूम पड़ता था, और जो इस समय ड्राइव कर रहा था, उसकी तरफ से उत्तर आया—हार्ट अटेक है—इससे अधिक उसने कुछ नहीं कहा।

डाक्टर साहब ने और कुछ पूछना उचित नहीं समझा। सच तो यह है कि उनका मन फौरन इंजेक्शनों की भाषा में सोचने लग गया था। थोड़ी देर सोचकर मानो किसी टूटी हुई कड़ी को ढूंढ़ते हुए बोले—रोगी की उम्र कितनी है ?

फिर ड्राइव करते हुए उसी सज्जन ने उत्तर दिया—२२ वर्ष होगी।

फिर डाक्टर साहब सोचने लगे, सिगरेट का एक कश लिया। बोले—पुरुष है या स्त्री ?

—स्त्री।

—पहले कभी अटेक होता था ?

—हां कभी-कभी।

कार बड़ी तेजी से चली जा रही थी। बात यह है कि इस समय रास्ते में कोई और गाड़ी तो चल नहीं रही थी। यद्यपि डाक्टर लक्ष्मण-स्वरूप का दिमाग दवा और उपचार के सम्बन्ध में ही व्यस्त था, फिर भी एक बार जब कार कई मील निकल गई, तो उन्हें यह ध्यान आया कि आखिर इतनी दूर से उन्हें बुलाने का क्या तुक है। इस प्रकार के आकस्मिक रोगों के मामलों में तो लोग यही देखते हैं कि जो जल्दी

मिल जाय उसी को बुलाया जाय। अगर दूर हुआ तो लोग ऐसे समय में पारिवारिक डाक्टर को भी न बुलाकर पास में जो भी डाक्टर मिल जाय, उसे बुलाते हैं। यह विचार मन में आते ही उन्होंने अपनी बाईं तरफ देखा, तो वहां यथा रीति हमेशा की तरह उनका भोजपुरी दरबान बैठा हुआ था। बस उनके इतमीनान के लिये इतना ही यथेष्ट था, और वे फिर दवा तथा उपचारों के सम्बन्ध में सोचने लग गये।

थोड़ी ही देर में कार एक विशाल बंगले के हाते में दाखिल हुई, और पोर्च के नीचे जाकर खड़ी हो गई। डाक्टर साहब अपने बुलाने वालों के साथ-साथ भीतर दाखिल हो गये। उन्होंने दरबान से बैग ले लिया। दरबान बाहर ही रह गया। जो सज्जन कार ड्राइव कर रहे थे, उन्होंने डाक्टर साहब के दरबान से कहा—तुम भी भीतर चलो।

पर डाक्टर साहब बोले—नहीं कोई जरूरत नहीं।

जब डाक्टर साहब रोगिणी के कमरे में दाखिल हुए, तो वहां पर कोई नहीं था, यद्यपि सारा घर लोगों से भरा हुआ मालूम देता था। डाक्टर साहब लपककर रोगिणी की तरफ बढ़े, और उन्होंने उसकी नाड़ी देखी। नाड़ी पर हाथ भी नहीं रखा था कि डाक्टर साहब चौंक पड़े, बोले—यह तो देर की मरी हुई है।

वही व्यक्ति जो कार ड्राइव कर रहा था, बोला—हम लोग जब आपको बुलाने गये हैं तब यह जीवित थी, इसी बीच में जो-कुछ हुआ सो हुआ।—उस व्यक्ति ने इन बातों को इतने निस्पृह ढंग से कहा कि मालूम होता था जैसे इस बात से उसका कुछ आता जाता नहीं था। जिन महाशय को मृत स्त्री का पति बतलाया गया था, वे भी कुछ विशेष विचलित नहीं ज्ञात हुए। डाक्टर साहब ने बहुत-से रोगियों को मरते देखा था, और दो-चार बार ऐसा भी हुआ था कि वे रोगी के मरने के बाद पहुंचे थे, पर उन मौकों पर उन्होंने बिलकुल दूसरा ही वातावरण पाया था। उन्हें कुछ अद्भुत-सा लगा। उन्होंने एक बार

फिर रोगिणी के मुंह की तरफ देखा, पर वहां जो बत्ती जल रही थी, वह इतनी तेज़ नहीं थी कि वे उस चेहरे पर मृत्यु की छाया के अतिरिक्त कुछ और पढ़ सके। स्त्री सुन्दरी मालूम होती थी, पर यह भी बहुत-कुछ अनुमान ही था।

जो व्यक्ति कार ड्राइव कर रहा था, उसने आगे बढ़कर डाक्टर साहब से पूछा—क्या अब कुछ नहीं हो सकता?

डाक्टर साहब ने कुछ रुखाई के साथ कहा—माफ कीजिये हम लोग जिन्दों का ही इलाज करते हैं।

वह व्यक्ति जैसे इस प्रकार के किसी उत्तर के लिये तैयार ही था। कागज और पेन आगे करते हुए बोला—तो फिर आप एक डेथ सार्टीफिकेट दे दीजिये।

डाक्टर को यह बात कुछ अजीब लगी। कभी उन्होंने किसी को इस प्रकार का सार्टीफिकेट न दिया हो ऐसी बात नहीं। बोले—मैं तो कोई सार्टीफिकेट नहीं दे सकता।

कहकर वे बैग उठाकर चलने को हो गये। उस व्यक्ति का चेहरा फक हो गया। बोला—क्या मतलब?

डाक्टर साहब ने अपने को कहता हुआ पाया—जब तक किसी की अच्छी तरह जांच नहीं कर ली जाती, तब तक इस प्रकार का सार्टीफिकेट देने का रिवाज नहीं है।

—आपने तो देख लिया?

—यह देखना कुछ नहीं है।

—तो?

—मैं जाता हूं। मुझे पहुंचा दीजिये।

वे दोनों व्यक्ति बहुत घबड़ा गये थे। डाक्टर साहब भी बाहर जाने के लिये उद्‌ग्रीव हो रहे थे। वे बाहर की ओर बढ़े। बोले—मुझे पहुंचा दीजिये। मैं ऐसे मामलों में नहीं रहता।

डाक्टर साहब उस कमरे की देहली पार कर ही पाये थे कि वह

व्यक्ति जो अब तक बात कर रहा था डाक्टर साहब के पैरों पर गिर पड़ा बोला—आप न बचावें तो हम लोग सब मारे जायेंगे।

इसके बाद उस व्यक्ति ने घिघियाते हुए जो बातें कहीं, उनका सारांश यों है। उसने कहा—मेरे बड़े भाई रोज़ शराब पीकर देर में आते हैं। इस पर उनमें और भाभी में रोज चख-चख रहा करती थी। आज भी ऐसा ही हुआ तो भाई साहब को गुस्सा आ गया और उन्होंने भाभी के पेट पर एक लात मारी। बस उसी से वह मर गई।

डाक्टर साहब पैर छुड़ाकर हटते हुए बोले—तो यह तो सीधे-सीधे खून का मामला है। मैं ऐसे काम में नहीं पड़ता।

वे यह भी कहने जा रहे थे कि मेरा कर्तव्य है कि पुलिस को खबर कर दूं, पर कुछ सोचकर वे चुप रह गये। मुंह से बोले—आपने मुझे क्यों बुलाया ?

—कुछ संयोग ऐसा हुआ कि हमारे पारिवारिक डाक्टर साहब किसी बारात में बाहर गये हुये हैं, तभी आपको कष्ट देना पड़ा। अब आप न बचावें तो हम बच नहीं सकते।

डाक्टर साहब ने फिर भी कहा—आपने गलत आदमी को पकड़ा। मैं ऐसे झगड़ों में नहीं पड़ता। मुझे आप पहुंचा दीजिये।

वह व्यक्ति जो इस समय तक गिड़गिड़ा रहा था, एकाएक तनकर खड़ा हो गया, बोला—डाक्टर साहब, अब हम लोग तो फंसे ही हैं। आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आप हमें बचाइये, और हम ऐसा मुफ्त में नहीं कराना चाहते। पर आप तो सुनते ही नहीं। एक बात तो आपको मालूम ही होगी कि एक कतल में भी फांसी होती है और दो कतल में भी फांसी होती है। आप अपना दाम बताइये, और वह आपको दे दिया जायगा। पर जैसे भी हो आप सार्टिफिकेट बिना दिये यहां से जा नहीं सकते।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप को एक धक्का-सा लगा, और वे सामने की कुर्सी पर बैठ गये। वे समझ गये कि इन लोगों की बात माने बगैर

यहां से निकलना सम्भव नहीं है। उनकी आंखों के सामने डाक्टर भटनागर की बातें, सत्यभामा का अप्रसन्न चेहरा और वीणा का उठकर चला जाना सब आ गया। वे समझ गये कि एक छोटा-सा निर्णय करते ही वे शायद अपनी सारी समस्याओं का समाधान कर लेंगे।

उन्होंने कहा—क्या कहते हैं, साफ-साफ कहिये ?

—एक हजार ले लीजिये, और मामले को रफा-दफा कीजिये।

डाक्टर साहब ने कहा—मैं तो ऐसी बातों में विश्वास नहीं करता।

उस व्यक्ति ने कहा—देखिये आप बहुत गलत समझ रहे हैं। यों भी हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। हम जाकर लाश को जला देंगे और कोई कुछ भी नहीं पूछेगा। एक बार लाश जल जाने पर एक-आध नौकर गवाह भी बन जाय तो कुछ नहीं बिगड़ सकता। मैं वकील हूं, मैं सारी बात समझता हूं। फिर भी यह सार्टिफिकेट इस कारण लेना चाहता हूं कि भाभी के मायकेवालों को कुछ सन्देह न हो जाय। सन्देह हो जाने से भी कुछ बिगड़ता नहीं है, फिर भी हम इस सम्बन्ध में यह एहतियात इस कारण करना चाहते हैं कि यदि इस प्रकार के सन्देह की बात फैल गई, तो भाई साहब की दूसरी शादी होना मुश्किल हो जायगा। मैंने आपको सारी परिस्थिति बता दी, अब आप समझ लीजिये।

—इतने बड़े काम के लिये एक हज़ार रुपया बहुत कम है।

—दो हजार ले लीजिये।

—नहीं, मेरा मन गवाही नहीं देता।

—याद रखिये कि यह संयोग की बात है कि हमारे डाक्टर साहब नहीं हैं, नहीं तो शायद सौ भी न लगते।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के मन में आया आखिर वह भी तो डाक्टर ही है, फिर वे ही क्यों राजा हरिश्चन्द्र बनकर बैठे रहें। बोले—सब डाक्टर एकसे नहीं होते।

इस प्रकार बातचीत होती रही। अन्त तक डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के

साथ सौदा पांच हज़ार में तय हुआ। डाक्टर साहब ने हिसाब लगाकर देखा कि यदि सत्यभामा, विकास, वीणा सब की मांगें पूरी की जाती हैं, तो भी चार हजार बच रहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने विवेक को इस तरह समझाया कि उनके सामने यह विकल्प तो था ही नहीं कि वे रुपये लें या न लें, बल्कि विकल्प यह था कि यहीं पर कत्ल हो जावें या रुपया लें। उन्हें नकद रुपये तो नहीं मिले, पर बड़े भाई का दस्तखती एक आई० ओ० यू० मिला जिस पर दस दिन पहले की तारीख डाली गई थी। यह तय हुआ कि कल बैंक खुलने के बाद नकद रुपये देकर यह आई० ओ० यू० वापस कर लिया जायगा।

डाक्टर लछमणस्वरूप उस रात को घर में जाकर सो गये जैसा कि वे हमेशा करते थे, पर हमेशा जिस प्रकार नींद आ जाती थी, उस प्रकार नींद नहीं आई। कोट की जेब में वह आई० ओ० यू० पड़ा हुआ था, और यद्यपि कोट हैंगर पर टांग दिया गया था, फिर भी उनका मन उसी में लगा रहा। उन्होंने पहले-पहल इस ओर कदम रखा था, इस कारण उन्हें कुछ डर भी मालूम हो रहा था। यदि उन लोगों ने विश्वासघात किया तो? इन्हीं बातों को सोचते-सोचते उन्हें सवेरे की तरफ कुछ मामूली-सी झपकी आ गई, और जब वे एकाएक किसी चीज की आवाज पाकर उठे तो देखा कि अच्छी तरह सवेरा हो चुका था। उठते ही उन्होंने कोट की जेब को टटोला और फिर बेड टी में जुट गये। यद्यपि कल रात की घटना बहुत अस्वाभाविक थी, फिर भी उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। वे अपने काम में जुट गये।

जब दिन के बारह बजे थे, तो कल का वह छोटा भाई आया, और उसने उन्हें पांच हज़ार रुपये नकद दिये, और वह आई० ओ० यू० वापस ले लिया। न उन्होंने उससे कुछ कहा, न उसने उनसे कुछ कहा।

: ९ :

उसी दिन सन्ध्या समय लाला दीनानाथ डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के पास फिर पहुंचे। डाक्टर साहब मानो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। तपाक से उनका स्वागत किया, और कुशल-प्रश्न पूछने लगे। लालाजी ने वही पुराना रोना छेड़ दिया—आप लोग कहते हैं कि मुझमें कोई रोग नहीं है, और मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं भीतर-भीतर धसा जा रहा हूं—कहकर उन्होंने एक बार चारों तरफ देखा लिया, और पहले से स्वर नीचा करके बोले—आप पैसों की चिन्ता न करें। मैं अपने इलाज के लिये सब-कुछ करने को तैयार हूं।

डाक्टर साहब ने गम्भीर मुद्रा बना ली, और बोले—हूं।

कहकर वे फिर स्टेथोस्कोप निकालकर लालाजी की अच्छी तरह जांच करने लगे। उनको तो अच्छी तरह मालूम था कि लालाजी को कोई रोग नहीं है। पर उन्हें तो दिखावा करना था जिसे उन्होंने अच्छी तरह किया। सीने की बाईं तरफ नीचे की ओर जहां पसलियां करीब-करीब खतम होती हैं, वहां पर पहुंचकर उनका स्टेथोस्कोप रुक-सा गया, और उस स्थान को उन्होंने बार-बार देखा। वे उस स्थान को उंगली से बजाते भी जाते थे। ज्यों-ज्यों बजाते त्यों-त्यों चेहरा गम्भीर बनाते जाते। बीच-बीच में हूं-हूं की तरह एक अस्फुट आवाज़ भी करते मानो उन्होंने किसी बात का आविष्कार कर लिया है। वे बीच-बीच में लाला दीनानाथ का चेहरा भी देखते जाते।

इस प्रकार उन्होंने बड़ी देर तक किया। कभी लालाजी से कहते लम्बी सांस लो, तो कभी और कुछ कहते। पूछा—यहां कोई दर्द है?

लालाजी ने कहा—नहीं।

—कोई फीका-सा दर्द, चीस देकर कभी उठता हो?

लालाजी असमंजस में पड़ गये। उन्हें ऐसा लगा कि यदि वे नहीं कहते हैं तो उनके इलाज की सारी सम्भावनायें समाप्त हो जाती हैं। उन्होंने इस कारण रोब में आकर कह दिया—कभी-कभी।

डाक्टर लचमणस्वरूप के चेहरे पर सफलता की हल्की हंसी आ गई। उन्हें स्वयं ही आश्चर्य हो रहा था कि अभी उन्होंने इस ओर कदम बढ़ाया है, और वे इसमें इतने दक्ष हो गये। उनके विवेक ने फिर भी उन्हें टोका, पर उन्होंने इस प्रकार शान्त कर लिया कि सब रोगियों के साथ उन्हें सम्पूर्ण ईमानदारी बरतनी है, पर लालाजी जैसे कुछ आंख के अन्धे और गांठ के पूरे रोगियों से कुछ पैसे जरूर बनाने हैं। वे नहीं बनायेंगे तो कोई और बनायेगा। फिर वे ही क्यों इस सम्बन्ध में पीछे रहें। उन्हें तो बल्कि अफसोस रहा था कि उन्होंने इतने वर्ष बेकार क्यों खो दिये।

लालाजी की जांच समाप्त हो गई तो लालाजी ने आशा और आशंका से कम्पित स्वर में पूछा—डाक्टर साहब, रोग का पता लगा?

डाक्टर साहब ने उठकर वाशबेसिन में दो बार हाथ धोये, फिर बोले—पता तो नहीं लगा, पर अब सही रास्ते पर आ गये हैं। मालूम होता है, अब पता लगेगा।

—क्या करना होगा? कोई एक्सरे वगैरह?

—नहीं नहीं, एक्सरे की कोई ज़रूरत नहीं। उससे तो केवल हड्डियों तक ही पता लगता है।

लालाजी चिन्तित होकर बोले—तो क्या रोग का पता नहीं लगेगा?

—मैंने कह तो दिया कि हम सही रास्ते पर आ गये हैं। इससे अधिक इस परिस्थिति में कुछ नहीं कहा जा सकता। आप मुझसे यह आशा न करें कि खामखाह कुछ कह दूंगा। जब तक कोई पक्की बात मालूम नहीं होगी, तब तक कुछ कह नहीं सकता।

लालाजी डरे, बोले—बस बस मैं यही चाहता हूं। आप से इसी प्रकार की आशा थी, इसी कारण मैं आपके पास आया।

डाक्टर साहब ने कहा—मैं आपको अभी एक मिक्शचर दूंगा, आप उसे पीते जायं, फिर देखा जायगा।

लालाजी को इतने ही से सन्तुष्ट होना पड़ा। डाक्टर साहब ने एक अच्छा-सा टानिक लिख दिया, और बोले—इसे चौबीस घंटा पीकर देखिये और फिर मेरे पास आइयेगा।

लालाजी ने चलते समय फिर एक सौ रुपये का नोट दिया! अब की बार डाक्टर लछमणस्वरूप ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। रात को एक ही मामले में पांच हज़ार रुपये पाकर उनके निकट रुपयों का मूल्य घट गया था। एक सौ रुपये उन्हें बहुत तुच्छ मालूम हुए। फिर भी उन्होंने अपने मन को यह कहकर शान्त किया कि अभी तो आरम्भ है। मछली को अच्छी तरह फंसाने के लिए यह जरूरी था कि उसे कुछ ढील दी जाती।

लाला दीनानाथ अभी चौखट से बाहर भी नहीं गये थे कि फिर लौट आये, और गिड़गिड़ाते हुए बोले—एक बात कहना भूल गया।

—कहिये।

—वह यह कि कोई आकर मेरे सम्बन्ध में कुछ कहे कि आप मेरा इलाज न करें या ऐसी कोई बात, तो आप उसकी बात न सुनें। बहुत से लोग चाहते हैं कि मेरा इलाज न हो, और मैं जल्दी मर जाऊं।

डाक्टर साहब ने कुछ रुखाई के साथ कहा—मेरा काम यह नहीं है कि एक रोगी की बात दूसरे को बताऊँ।

लालाजी ने कहा—यह तो मैं जानता हूं, फिर भी आपको याद दिला दिया।

कहकर वे चले गये। डाक्टर साहब अपने कामों में जुट गये। जब वे रात को घर के अन्दर गये, तो उन्होंने अजीब बात देखी कि न सत्यभामा थी, न वीणा। अवश्य वे दोनों कभी-कभी पार्टियों में जाया करती थीं, पर आज तो ऐसी किसी पार्टी की खबर नहीं थी। यों तो वे दिन-भर अपने काम में लगे रहते थे, पर जब रात को घर के अन्दर आने के बाद कोई नहीं मिलता था, तो दिल बैठ जाता था। इन्हीं लोगों के लिए वे इस प्रकार जी-तोड़ परिश्रम करते थे, और ये ही उन्हें अपने

जीवन के लिए आवश्यक नहीं समझती थी। जो कुछ सम्बन्ध था वह रुपये लेने का सम्बन्ध ही था। जैसे और कोई बात ही नहीं रह गई थी।

वे इसी प्रकार बैठे हुए कोई पुस्तक देख रहे थे कि सत्यभामा तथा वीणा दोनों कहीं से आईं। वीणा सीधी उनके पास पहुंची, और पार्टी में आए हुए लोगों विशेषकर स्त्रियों के वर्णन के बाद वह कल के प्रसंग पर पहुंची। बोली—आज तो मालूम हुआ कि मेरी और भी कई सहेलियां उस टूर में जा रही हैं। ऐसी कई लड़कियां जा रही हैं जो बहुत ही गरीब घर की हैं। पापा अब मैं नहीं जाऊँगी, तो लोग मुझ पर उँगलियां उठायेंगे। मुझे तो रुपये ज़रूर चाहिएं।

डाक्टर लछमणस्वरूप अपनी लड़की से सचमुच प्रेम करते थे। जब से वे अपने पेशे में चमकने लगे थे, तब से कार्य में व्यस्तता के कारण सत्यभामा से उनका सम्बन्ध कम होता गया था। पहले तो दोनों तरफ से इस तरह की भावना थी कि यह मजबूरी है, पर जब यह मजबूरी महीनों और वर्षों तक चली, और यह देख लिया कि यह मजबूरी स्थायी है, तो उन दोनों में सम्बन्ध शीतल पड़ गया, और कम-से-कम रह गया। पर वीणा के साथ सम्बन्ध गहरा होता गया। यद्यपि डाक्टर साहब उसे बहुत कम समय के लिए देखते थे, फिर भी उनका स्नेह बढ़ता ही गया। विकास के चले जाने पर तो वीणा ही उनके लिए एकमात्र आधार रह गई थी। वीणा की किसी बात को टालते हुए उन्हें कष्ट होता था।

डाक्टर साहब ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि वीणा को रुपये दे देने हैं। फिर भी छेड़ने के लिए हंसकर बोले—हम लोगों ने छात्रावस्था में इतने टूर नहीं किये, तो क्या हम लोगों को शिक्षा नहीं मिली ?

—यह कौन कहता है ? फिर भी यह तो साफ है कि तब से अब हर मामले में अधिक उन्नति हुई है।

डाक्टर साहब ने कहा—अहा तो तुम ऐसा समझती हो। याद

रखना तुम्हारे बेटे-बेटी भी तुमको ऐसा ही समझेंगे।

इसी ढंग पर बाप-बेटी में देर तक बातचीत होती रही। अन्त में डाक्टर साहब ने वीणा को रुपये दे दिये। रुपये मिलने के बाद भी वीणा कई मिनट तक डाक्टर साहब के पास बैठी इधर-उधर की बातें करती रही। पर उसका मन अब इस बातचीत में नहीं था। वह एक तो यह सोच रही थी कि उसने चार सौ के बजाय छः सौ क्यों नहीं माँगे। पिताजी तो आज ऐसे मूड में थे कि छः सौ की जगह हज़ार दे देते। दूसरा अब वह सुरेन्द्र मोहन की बात सोचने लगी थी कि टूर के दौरान में वह उससे मिलेगी तो कितनी मौज रहेगी। थोड़ी देर तक बातचीत के बाद वह उठकर पहला बहाना मिलते ही चली गई।

उसने किसी समय मौका पाकर सत्यभामा से भी कह दिया कि उसे रुपये मिल गये। जब सत्यभामा ने इस पर अविश्वास किया तो उसने चार हरे नोट निकाल कर दिखा दिए। सत्यभामा इस पर अन्दर से बहुत चिढ़ गई क्योंकि एक तो विकास के लिए सौ रुपये की तुरन्त आवश्यकता थी, इसके अतिरिक्त उसे एक पार्टी देने के लिए कम-से-कम चार सौ रुपये की आवश्यकता थी। वह इस बात से भी नाराज थी कि इतने रुपयों के मामलों में भी उससे एक बार पूछा तक नहीं गया।

वह आगबबूला होकर भीतर-ही-भीतर घुटकर रह गई, क्योंकि उस समय डाक्टर साहब किसी काल पर बाहर निकल गए थे। जब डाक्टर साहब लौटे, तब वह सीधे उनके पास पहुँची और विकास के लिए रुपये तथा पार्टी देने का प्रसंग छेड़ा। डाक्टर साहब ने बिना तर्क किये जितने रुपये माँगे गए थे सत्यभामा के हवाले कर दिए।

यद्यपि कृष्णकुमार डाँट खाकर लाला दीनानाथ के घर से निकाला गया था, फिर भी उसने यह सोचकर तसल्ली कर ली कि उसे तो सुई की नोक की तरह जगह चाहिए, फिर तो वह उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ने की अपनी कला की बदौलत सब-कुछ कर लेगा। विशेषकर उसे अपनी स्त्री रूपा पर पूरा भरोसा था फिर भी उस दिन दीनानाथ के घर पर जो कुछ गुजरा था, उसने उन सारी बातों को अपनी पत्नी से कहना उचित नहीं समझा। वह जानता था कि रूपा उसे इसलिए बुद्धू बताएगी कि लाला दीनानाथ को छिपकर उसकी बातों को सुनने का मौका कैसे मिल गया। इसलिए उसने घर में आकर कुछ और ही कहा, बोला—राधा को मैंने सब बातें कहीं। मैंने यह कहा कि कुछ दिनों के लिए हम लोग तुम्हारे यहाँ आकर रहें तो कैसा रहे...

कृष्णकुमार की बातों को बीच में काटकर रूपा बोली—तुमने यह क्यों कहा कि आकर रहें तो कैसा रहे। यह कोई कहने का तरीका है।

—सारी बात भी सुन लो फिर टीका करना।

—बात क्या सुन लूँ, मैं तो सारी बात समझ गई। जब ऐसे कोई प्रश्न किया जायगा, तो उसका उत्तर खामखाह ना में होगा। तुम तो यही समझते होगे कि वह तुम्हारी बहन है, तुम्हें पास पाने के लिए बहुत उत्सुक है, पर वह तो अब अपने को राजरानी समझती होगी, और तुम्हारे ऐसे को नौकर समझती होगी। वह भला तुम्हारे साथ क्यों रहना चाहती होगी!

—नहीं नहीं, उसने ऐसी कोई बात नहीं कही। उसने तो बल्कि यह कहा कि भाभी आकर कमरा पसन्द कर लें, फिर चली आवें।

—अच्छा, उसने ऐसा कहा? मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता। कह कर वह जैसे क्षण-भर सोचती रही, फिर बोली—कमरा पसन्द करने की कौनसी बात है! मैं कौनसी सदा रहने को जा रही हूँ। जो भी

कमरा अच्छा होगा, उसी में रह जाऊंगी। एक दफे कमरा पसन्द करने चलूं, और एक दफे जाऊं, यह मुझे पसन्द नहीं।

कृष्णकुमार ने जब यह सुना तो वह बहुत घबड़ा गया। असली बात कह देता तो अपना अपमान होता था। लालाजी ने जो कुछ कहा सो कहा, अब उन बातों को सुनकर रूपा जो कुछ कहती, वे उनसे खराब होतीं। उनको तो वह झेल गया था पर इन्हें झेलना बहुत कठिन होता। बात यह है कि रूपा में यह आदत थी कि एक ही बात को बार-बार कहती थी, और जब वह किसी बात को इस प्रकार कहती थी, तो पहले से कहीं अधिक कड़वी बनाकर कहती थी। फिर भी इस परिस्थिति को रोकना तो था ही। कहीं बात न मानकर रूपा मय सामान के वहां पहुंच गई, और लालाजी ने उसी प्रकार से तेवर बदला जैसा कि उन्होंने उस समय बदला था, तो फिर बड़ी फजीहत होगी। बीच में वह बिल्कुल मारा जायेगा। उसकी हालत तो सचमुच न घर की न घाट की होगी। उसने निराशा के साहस से बली होकर कहा—तो फिर न चलो, और क्या कह सकता हूं?

—क्यों न चलूं क्यों? मैं तो जाऊंगी, और वहीं पर खड़े-खड़े कोई कमरा पसन्द कर लूंगी।

एकाएक कृष्णकुमार को एक सूझ-सी आ गई, बोला—तुम तो समझती नहीं हो। बड़े आदमियों की बड़ी बातें होती हैं। उस मकान में कोई बीस कमरे हैं, सब हर समय साफ थोड़े ही रहते हैं। जब तुम जाकर किसी कमरे को पसन्द करोगी, तो उसकी सफाई होगी, शायद उस पर कलई फेरी जाय, उसमें अच्छे फर्नीचर लगेंगे, सैकड़ों बातें हैं।

रूपा बोली—मैं खुद ही सफाई कर लूंगी, और फर्नीचर वगैरह मेरे सामने लग जायगा तो कौन शान में बट्टा लग जायगा।

डूबते को तिनके का सहारा काफी होता है। एक तर्क को तिनके की तरह पकड़ते हुए कृष्णकुमार ने कहा—भई देखो, बहन हो चाहे कोई हो, वह घर तो लाला दीनानाथ का है। वहां ऐसे थोड़े ही हो

सकता है कि एक झाड़ू लिया और सफाई में जुट गए। वहां तो सफाई और ढंग से होती है—बात बिलकुल झूठी थी पर कृष्णकुमार ने सिर पर आई हुई विपत्ति से बचने के लिए इस झूठ का सहारा लिया। सोचा शायद रूपा कुछ रोब में आ जाय।

पर उल्टा असर हुआ। रूपा तमक कर बोली—मैं यह सब भ्रष्टाचार नहीं होने दूंगी। मैं जहां रहूंगी वहां सफाई तो मेरे ही ढंग से होगी। मैं यह पसन्द नहीं करती कि इस सम्बन्ध में मुझसे कोई कुछ कहे—कहकर एकाएक आवाज़ चढ़ाकर बोली—मैं जहां रहती हूं, वह कोई घर है? मेरा तो करम फूटा हुआ है, फिर भी मैं इस घर को कितना साफ रखती हूं। कोई कहे तो कि रूपकुमारी देवी से बढ़कर कोई सफाई कर सकता है।

कृष्णकुमार फिर डरा कि कहीं यह अनुरोध न मानकर सीधे पहुंच गई तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। उसे लाला दीनानाथ के उस समय का वह चेहरा फिर याद आया जब उन्होंने उसे फटकारा था। उसने जल्दी से कहा—सो इसमें क्या शक है? पर इस बात को कौन कह रहा है? तुम तो दीवार से लड़ती हो। यहां तो सारी सफाई झाड़ू और पानी से होती है, पर वहां तो फिनाइल है, तो डी०डी०टी०है, वैकुयम क्लीनर है, सैकड़ों नखरे हैं। वहां एक-एक गलीचा पड़ा हुआ है जिसके सैकड़ों रुपये दाम हैं। अगर उनसे पानी छुआ भी दिया जाय, तो उनका नाश हो जाय।

—मैं भ्रष्टाचार सह नहीं सकती।

—इसमें भ्रष्टाचार क्या है, जैसी चीज़ है उसकी सफाई वैसे होती है। हर बात पर जिद नहीं किया करते।

पर रूपा नहीं मानी। तब कृष्णकुमार मजबूर होकर बोला—तो फिर न जाओ, एक यही रास्ता है। वे बड़े आदमी हैं, वहां तो उन्हीं के तरीके चलेंगे।

रूपा इस ब्रह्मास्त्र के सामने तिलमिला गई। बात यह है कि बहुत दिनों से वह यह योजना बना रही थी। फिर भी अपनी आक्रमणात्मक

नीति को जारी रखते हुए बोली—राधा कौन बड़ा आदमी है ? मैं जैसे उसे जानती नहीं हूं। यदि मैं उसे टुकड़े देकर न पालती तो वह कहां होती ? आज वह दस दिन में ही बहुत बड़ी हो गई। और तुम इस बात को किस मुंह से कहते हो ? तुम तो उसकी शादी रमाकान्त से कर रहे थे जिसके घर में चूहे डंड पेलते रहते हैं। यह तो मैं ही हूं कि उस शादी को होने नहीं दिया, नहीं तो कैसे तुम्हारी बहन राजरानी बनती यह मैं देख लेती। यहां तो दिन-भर उसके हाथ में झाड़ू ही रहता था, क्या वह इस बात को भूल गई ? अब वह कहती है कि ऐसे नहीं वैसे सफ़ाई होगी।

कृष्णकुमार ने देखा कि ऐसे काम नहीं बनेगा। उसने सोचा था कि वैकुयमक्लीनर आदि का नाम लेकर वह रूपा पर रौब डाल सकेगा, पर इसका बिल्कुल ही विपरीत परिणाम हुआ। तब उसने दूसरा रास्ता अपनाया, बोला—भई उनके यहां यही रिवाज है, जो मेहमान जाता है, वह पहले एक बार मिल आता है। कभी लालाजी के खानदान में ऐसा हुआ था कि कोई मेहमान उनके यहां ठहरा तो वह बाल-बच्चे समेत बीमार हो गया, और कई आदमी मर गए। तब से ब्राह्मणों ने उनके कुल में यह रिवाज चला दिया है। मैं चाहता था कि इस बात को न कहूं, क्योंकि तुम्हारी प्रकृति तो यह है कि जब क्रोध में आओगी, तो सब-कुछ बक जाओगी। यह लालाजी के खानदान की बहुत गूढ़ बात है। मुझे तो यों ही पता लग गया।

रूपा ने जो यह सुना तो एकदम पानी-पानी हो गई। उसका चेहरा बदल गया, बोली—तुमने यह पहले क्यों नहीं बताया ? यह तो मेरी अपनी भलाई की बात है। धर्मशास्त्र की बात को तो मैं कभी टाल नहीं सकती।

कृष्णकुमार ने चेहरे को रुआंसा बनाकर कहा—मुझे तो यह बात बताने से रोका गया था। हर खानदान में कुछ-न-कुछ ऐसी बात होती है। वे नहीं चाहते कि इन बातों को कोई बाहरी जाने।

रूपा अपनी पराजय से यों ही भीतर-ही-भीतर चिढ़ गई थी, मौका पाकर बोली—तो मैं बाहरी हूं, और तुम भीतरी हो। वाह क्या खूब रहा। मुहल्ले, टोलेवाले सब जानते हैं कि तुम अपनी बहन से कितना प्रेम करते थे। अब वह बड़े घर में ब्याही गई है, तो खुद भीतर के आदमी बन गए और मुझे बाहरी बता दिया। भीतर-भीतर बहन को भर भी आये होगे।

कृष्णकुमार का असली उद्देश्य सफल हो चुका था, इसलिए उसने इन बातों की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया, बोला—तुम तो बात का बतंगड़ बनाती हो। अरे, मैं तो यह कह रहा हूं कि अब उनके लिए मैं भी बाहरी हूं, और तुम भी बाहरी हो। लड़की या बहन जब पराये घर में चली गई, तो उसे पराई ही समझना चाहिए। मैं तो यही कह रहा था।

रूपा को एकाएक एक बात याद आई, बोली—तुम तो पूछ आये। फिर मेरे जाने की क्या जरूरत है? उनके खानदान का रिवाज़ इतना ही न है कि कोई पहले आकर पूछ जाय, सो तुम पूछ आए। अब मेरे जाने की क्या ज़रूरत है?

बात बताते समय कृष्णकुमार ने यह बिन्दु नहीं सोचा था। उसका चेहरा उतर गया। पर उसने पहले से भी अधिक फुर्ती से नई बात बनाते हुए कहा—मैं भी कितना भुलक्कड़ हूं कि यह कहना भूल गया कि घर की मालकिन को जाना पड़ता है।

अब रूपा निरुत्तर हो गई।

अगले दिन रूपा लाला दीनानाथ के घर गई, और बकायदा अनुमति प्राप्त कर उससे अगले दिन सपरिवार लालाजी के यहां पहुंच गई। कृष्णकुमार घर देखने के बहाने अपने घर ही पर बना रहा, पर दोनों शाम जाकर खाना लाला दीनानाथ के यहां खाता था। इस प्रकार जो आवाजाई बनी रहती थी, उसका वह पूरा फायदा उठाता था। जो भी छोटी-मोटी चीज़ रूपा उसे सब की आंख बचाकर दे देती

थी, वह उसे घर ले आता था। राधा सुन्दरी को कानों कान इसका पता नहीं होता था। घर बड़ा था, चीज़ें बहुत थीं, बहुत-सी चीज़ों से स्वयं राधा सुन्दरी का परिचय नहीं था, इसलिए रूपा के काम में कोई रुकावट नहीं था पैदा हुई। वह स्वयं भी कभी-कभी घर जाकर देख आती थी कि जिन चीजों को वह भेज रही है, वे ठीक से पहुंच रही हैं कि नहीं।

: ११ :

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप दिन-भर अपने काम में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें दम मारने की फुर्सत नहीं मिलती थी। फिर भी जब भी उन्हें कुछ एकान्त में बैठने का मौका मिलता था, उन्हें कुछ सन्देह-सा होता था कि वे ठीक कर रहे हैं कि नहीं। तब से उन्होंने और कई मामलों में अपने नये गुर का प्रयोग किया था। अब तो उन्हें अक्सर एक-दो केस ऐसे मिल जाते थे, जिनके सम्बन्ध में वे यह समझते थे कि थोड़ा फेर फार किया जाय तो उसमें कोई हर्ज नहीं। उनके साथ न्याय करने के लिए यह मानना ही पड़ेगा कि अधिकांश रोगियों के साथ वे अब भी ईमानदारी का बर्ताव करते थे। कई क्षेत्र में तो वे अब अपनी फीस भी नहीं लेते थे।

अभी दो दिन की बात है कि वे एक रोगी के घर में गये, तो वहां रोगी मृत्यु-शय्या पर था। रोगी के मूत्राशय ने काम करना बन्द कर दिया था। पहले छोटे डाक्टर बुलाये गये थे, पर रोगी की अवस्था में कोई उन्नति न होने के कारण वे बुलाये गये थे। घर की दशा देखकर ही वे समझ गये कि बुलानेवाले की हालत बहुत बुरी है। यों तो

उन्होंने कुछ उपचार किया, पर उन्हें कोई आशा नहीं थी। बातचीत के दौरान में उन्हें ज्ञात हो गया कि जो व्यक्ति उन्हें बुला लाया वह सरकार के किसी विभाग में एक मामूली नौकर था, और दो महीना हुए रिट्रेन्चमैन्ट में आ गया है। जो व्यक्ति मृत्यु-शय्या पर था वह पेन्शनर था, और उसी के पेन्शन पर सारे घर का गुजारा हो रहा था। सारे वातावरण में विषाद छाया हुआ था। जब वे रोगी का उपचार करके चलने लगे, तो फीस देने के लिए गृह-स्वामी का लड़का आगे बढ़ा। उन्होंने इशारे से उसे मना कर दिया और धीरे से कहा—मैं फीस नहीं लूंगा।

उनके इन व्यवहारों से लोग बहुत आश्चर्य पड़ जाते थे। उनके सम्बन्ध में वर्षों की यह ख्याति थी कि वे रोगियों को डांटते फटकारते हैं, तथा किसी का पैसा नहीं छोड़ते। इसलिए इधर जो एकाएक उन्होंने फीस लेने के सम्बन्ध में किसी-किसी क्षेत्र में ढिलाई शुरू कर दी तो उनका नाम और बढ़ा। लोग यह समझने लगे कि अब उन्हें परलोक की चिन्ता हुई, तभी वे इस प्रकार से रियायत करने लगे। असली बात क्या थी वह तो पहले ही बताई जा चुकी है।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप की आय पहले से छोटी हो गई थी। अवश्य उस रात को जिस प्रकार का दाव लगा था, वैसा दाव फिर नहीं लगा था। अब जब भी वे रात को कहीं अपरिचित लोगों के द्वारा बुलाये जाते थे तो उनके मन में यह आशा उत्पन्न होती थी कि शायद उस तरह का कोई मामला हो। पर वे निराश होते थे। एक शान्तिप्रिय ईमानदार नागरिक से वे अब एक ऐसे व्यक्ति में परिणत हो गये थे जो यह चाहता था कि लोग अपनी स्त्री आदि की हत्या करें, और उसे छिपाने के लिए उनकी सहायता लें।

यद्यपि उनके मन में कुछ-कुछ सन्देह था, पर अर्थ-पिपासा इतनी बढ़ती जा रही थी कि मन के नक्कार खाने में विवेक की तूती नहीं सुन पड़ती थी। वे दिन-ब-दिन खड्ड में ही गिरते जा रहे थे। मन को सम-

कमाने के लिए वे यह तसल्ली कर लेते थे कि जब सभी डाक्टर ऐसा कर रहे हैं तो उन्होंने ही ऐसा किया, तो उसमें बुराई क्या है।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप फुर्सत में बैठकर एक डाक्टरी पत्रिका पढ़ रहे थे, इतने में एक व्यक्ति उनकी डिस्पेन्सरी में आया जिसे देखकर उनका अर्थ-पिपासु मन बोल उठा कि हो-न-हो यह कोई मोटा आसामी है। एक दृष्टि में ही वे समझ गए कि इस व्यक्ति को कोई रोग नहीं है। उन्होंने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया, और बैठने के लिए कहा। वह व्यक्ति बैठ तो गया, पर हिचकिचाता रहा। उसने इधर-उधर देखा, फिर भी कुछ नहीं कहा।

डाक्टर साहब ने उसका ढाढ़स बंधाने के लिए कहा—यहां कोई नहीं है। आप निश्चिन्त होकर कहें।

फिर भी वह व्यक्ति हिचकिचाने लगा।

डाक्टर साहब ने उसे इशारा किया, और दोनों उठकर अन्दर के आपरेशन रूम में चले गये। आपरेशन रूम में लोशनों विशेषकर आइडोफार्म की जाति की कोई चीज़ महक रही थी। इन गन्धों से मन पर एक विशेष प्रकार का असर पड़ता था।

दोनों वहां की कुर्सियों पर बैठ गए, फिर डाक्टर साहब ने कहा—कहिये...

उस व्यक्ति ने कहा—आप लाला दीनानाथ का इलाज कर रहे हैं?

डाक्टर साहब समझ गए कि कोई पेचीदा मामला है, पर वे यह न समझ सके कि आखिर मामला क्या है। लाला दीनानाथ उन्हें पहले ही चेतावनी दे गये थे कि उनका साला उनके पीछे पड़ा है, इसलिए उन्होंने अनुमान किया कि यह वही होगा। तो क्या यह व्यक्ति उनके पास इसलिए आया है कि वे कोई दवा देकर उनका...। नहीं वे ऐसा कभी नहीं करेंगे। चाहे एक लाख मिल जाय। वह और बात थी कि मरनेवाली तो मर चुकी थी, और उन्होंने हत्या को खुलने से रोक लिया।

पर यह तो सरासर हत्या है। डाक्टर होकर हत्या, नहीं-नहीं वे ऐसा कभी नहीं करेंगे। बोले—कौन लाला दीनानाथ ?

—लाला दीनानाथ। चौक वाले जिनका आप इलाज कर रहे हैं।

डाक्टर के मन में संकल्प और दृढ़ हुआ। बोले—आप कौन हैं ? हमारे यहां एक रोगी से दूसरे रोगी की बात बताने का नियम नहीं है।

डाक्टर साहब ने इन बातों को कुछ रुखाई के साथ ही कहा। यद्यपि वे समझ गये थे कि आसामी मोटा है, और शायद अच्छी रकम भी देने के लिए तैयार हो जाये, फिर भी जिस काम को करना नहीं है, उस सम्बन्ध में बातचीत ही क्यों की जाय। उन्होंने उस व्यक्ति की तरफ से मुंह फेर-सा लिया, और माथे पर कुछ सिकुड़नें आ गईं। दो मिनट पहले उनके चेहरे पर जो खुशी छा गई थी, वह लुप्त हो गई, और उसके स्थान पर एक झुंझलाहट-सी अंकित हो गई।

उस व्यक्ति ने कहा—मैं उनका लड़का हूं।

डाक्टर साहब जानते थे कि दूसरी शादी के बाद से लाला दीनानाथ और उनके दो बेटों में पटती नहीं है और वे बिल्कुल अलग-अलग रहते हैं। इसलिए यद्यपि उनके अनुमान के विरुद्ध यह व्यक्ति लाला दीनानाथ का साला न निकलकर बेटा निकला, फिर भी उन्हें मालूम पड़ा कि उद्देश्य तो वही होगा चाहे साला हो अथवा बेटा—उन्हें बड़ी घृणा-सी मालूम हुई कि बेटा होकर यह व्यक्ति अपने पिता की शायद हत्या कराने आया है। उन्हें एकाएक विकास की याद आ गई। उनका संकल्प और भी दृढ़ हुआ। बोले—आप अपना मतलब कहिये।

—मैं आपसे एक सहायता के लिए आया हूं।

—...

—आप जानते होंगे कि हमारे पिताजी ने दूसरी शादी की है। आपको शायद यह भी पता हो कि हम लोग इस शादी के विरुद्ध हैं। शादी के कुछ पहले से ही पिताजी हम लोगों से अलग रहते हैं। अब

उनके मन में क्या है कोई नहीं जानता। इसलिए मैं दोनों भाइयों की तरफ से आपके पास आया हूं कि आप अवश्य मदद करेंगे।—कह कर वह व्यक्ति एकाएक रुक गया।

—मैं नहीं समझा।

—अजी बात यह है कि लोग यह समझते हैं कि न मालूम पिताजी के पास करोड़ों या अरबों रुपये हैं, पर मैं तो जानता हूं कि हम लोगों की हैसियत मुश्किल से दस-पन्द्रह लाख की होगी।

डाक्टर साहब उसी प्रकार से आगन्तुक की तरफ मुंह बाये रहे उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि हैसियत दस-पन्द्रह करोड़ की हो चाहे दस पन्द्रह लाख की हो इससे क्या आता जाता है। बल्कि ज्यादा सम्पत्ति होती तो लाला दीनानाथ को और भी खतरा होता। बोले—आप मुझसे जायदाद की बात क्यों कर रहे हैं? मुझसे रोग की बात कीजिये?

वह व्यक्ति कुछ झेंप गया, बोला—जी बात यह है कि उनकी शादी से हमें बड़ा दुःख पहुंचा। हम लोगों ने उन्हें बहुत समझाया था, और हितैषियों ने उनको यह भी समझाया था कि वे भले ही किसी स्त्री से ताल्लुक रखें, पर शादी न करें, पर उन्होंने किसी की बात नहीं मानी, और यह शादी कर डाली। तब से उनसे हम लोगों की बोल-चाल तक बन्द है। उन्होंने अपनी शादी में पता नहीं कितना खर्च किया, पर जो खबरें मिली हैं, उससे पता चलता है कि अपने साले को नकद दस हजार रुपये दिये हैं। बताइए इससे हमें कितना दुःख होता है।...

वह और भी कुछ कहने जा रहा था, पर डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने उसे बीच में टोकते हुए कहा—इन सब बातों से मुझे क्या मतलब? मैं रोगियों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध नहीं रखता।

उस व्यक्ति ने चारों तरफ देख लिया। बोला—जी यह बात तो है, पर मैं बड़ी मुसीबत में पड़कर आपके पास आया हूं—कहकर वह

कुछ देर तक रुका, फिर बोला—अब हमें एक बात की बड़ी शंका है, और वह ऐसी है जिससे आप हमें बचा सकते हैं।

डाक्टर साहब ने मन में सोचा कि अब यह जरूर कहेगा कि लाला दीनानाथ को कोई दवा देकर मार दो। उन्हें फिर विकास की याद आई, और वे सिहर उठे। उन्होंने फिर से संकल्प कर लिया कि प्रलोभन कितना भी जबरदस्त हो, यह काम नहीं करना है। बोले—देखिए आप कुछ गलती पर हैं, मैं आपसे लाला दीनानाथ के सम्बन्ध में कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं उनका इलाज करता हूं, तीसरे आदमी का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। आपको कोई रोग हो तो कहिये, नहीं तो फीस देकर यहां से तशरीफ ले जाइये।

इस पर लाला दीनानाथ का पुत्र विश्वंभर नाथ बहुत परेशान हुआ, बोला—पहले आप पूरी बात तो सुन लें। पिता के प्रति मेरी भक्ति पहले की ही तरह है। मैं उनको कोई हानि पहुंचाना नहीं चाहता। मैं तो यह चाहता हूं कि न वे हमको हानि पहुंचायें और न हम उनको हानि पहुंचाएं।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप सन्देह में पड़ गये। अब तक वे समझ रहे थे कि षड्यन्त्र प्राण को लेकर है, पर विश्वंभरनाथ ने जो-कुछ कहा उससे तो किसी और ही बात की भनक आती थी। तो क्या यह इसलिए आया है कि वे बीच में पड़कर पिता पुत्र में मेल करा दें। है तो यह अच्छी बात पर इससे उनको क्या लाभ? उनके पास इतना समय नहीं है कि वे इन झगड़ों में पड़ें। उन्हे सारे मामले में कोई दिलचस्पी नहीं रही। यह तो अजीब मामला निकला। रंग ढंग से कहां तो वे यह समझ रहे थे कि बड़े भारी प्रलोभन का सामना है, पर यहां तो और ही बात निकली। इसके लिए डाक्टर के पास आने की क्या जरूरत थी। कुछ झुंझलाहट के साथ हाथ की घड़ी की ओर देखकर बोले—आपने मेरा काफी समय नष्ट कर दिया। इसके लिए किसी रिश्तेदार को पकड़िये। मेरा क्यों समय खराब कर रहे हैं?

विश्वम्भर नाथ डाक्टर की झुंझलाहट की परवाह न कर बोला—मैं एक व्यापारी हूं, समय का मूल्य जानता हूं। आप इसकी परवाह न करें। जो फीस कहेंगे वह दे देंगे। अब मेरी बात को ध्यान से सुन लीजिये। मैंने साफ कह दिया कि मैं अपने पिता को किसी प्रकार हानि पहुंचाना नहीं चाहता, पर इतना परस्वार्थी भी नहीं हूं कि खड़े-खड़े अपना नुकसान देखूं। वृद्धा आदमी तो बच्चे की तरह होता है, कई मामलों में कई बार वे खुद सोच नहीं पाते, उस समय उनको बच्चे की तरह चलाना चाहिये।—कहकर उसने अपने गले को साफ किया, और कहा—जैसे वे चल रहे हैं, बहुत करेंगे तो लाख-दो लाख फूंक देंगे। इस नुकसान की तरफ से हम लोगों ने अपना मन कड़ा कर लिया है, पर इससे अधिक नुकसान न हो, यह देखना हमारा कर्तव्य है। तो सुन लीजिये—साफ बात यह है कि हम यह नहीं चाहते कि अब हमारा कोई और भाई पैदा हो...

डाक्टर साहब को जैसे अथाह सागर में किनारा मिल गया, पर वे अब भी समझ नहीं पाये कि उन्हें क्या करना है। बोले—मैं नहीं समझा।

—अजी इसमें समझने की बात क्या है। आपके पास वे धातु-पुष्ट वगैरह के लिए आते हैं, मैं यह चाहता हूं कि आप उन्हें ऐसी दवा दें जिससे सन्तान उत्पन्न होने की कोई सम्भावना न रहे। इसके लिए आप जो फीस कहेंगे, वह आपको दे दी जायगी।

अब डाक्टर साहब सारी बात समझ गए। उन्होंने मन में यह भी सोच लिया कि इसमें कोई बुराई नहीं है। यदि कल सत्यभामा मर जाय, और वे दूसरी शादी करें, तो यदि विकास यह चाहे कि उनकी कोई और सन्तान उत्पन्न न हो जिससे सम्पत्ति उसी को मिले, तो यह कोई अयुक्तिसंगत बात नहीं है। लाला दीनानाथ को तो शादी ही नहीं करनी चाहिये थी। अब उनका मन बिल्कुल तैयार था। बोले—पर यह तो ठीक न होगा।

—मैं तो पहले ही बता चुका कि मैं उनको हानि नहीं पहुंचाना चाहता। जब यह परिस्थिति है तो मैं अगर यह चाहूं कि वे मुझे हानि न पहुंचायें, तो इसमें कोई बुरी बात तो नहीं है।

—पर यह तो आपके स्वार्थ की बात हुई, मुझे तो उनके साथ विश्वासघात करना पड़ेगा। वे मेरा विश्वास करते हैं, और मेरी दी हुई दवा खाते हैं, और मैं उनके साथ ऐसा करूं यह उचित नहीं मालूम देता।

एक पक्के व्यापारी की तरह विश्वम्भरनाथ समझ गया कि सौदे में केवल मोल-भाव का ही भाग बाकी रहा। बोला—आप उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचा रहे हैं, बल्कि एक उपकार कर रहे हैं। वे समझाने से तो किसी बात को मान नहीं सकते, इसी कारण कौशल से काम लेना पड़ेगा। इसमें आपको जो कष्ट होगा उसके लिए आप फीस ले लीजिये। मैं आपको इसके लिए एक हज़ार रुपये देना स्वीकार करता हूं।

दोनों देर तक मोल-भाव करते रहे। अन्त में २५०० रुपये पर सौदा तय हुआ।

: १२ :

वीणा और सुरेन्द्र मोहन भ्रमण करके लौटे, तो उनका प्रेम पहले से दृढ़ हो चुका था। सुरेन्द्र मोहन तो सिर से पैर तक कृतज्ञ था। उसने इस भ्रमण का बहुत उपभोग किया था। छिप-छिपकर बिल्कुल नई परिस्थितियों में अपनी प्रेयसी से मिलने में एक न्यारा ही मज़ा था। यह तो एक हनीमून-सा हो गया था। पर उनमें जितना भी प्रेम

बढ़ा हो, वे इस बात को पहले से अधिक अनुभव करने लगे थे कि उनमें विवाह होना कितना कठिन है।

जब वीणा घर में लौटी तो उसने देखा कि कहीं से एक तरुण युवक घर में मेहमान बना हुआ है। युवक एम० ए० पास कर आई० ए० एस० की तैयारी कर रहा था। रंग-ढंग से मालूम होता था कि उसको पैसों की कमी नहीं है। सत्यभामा विकास से भी बढ़कर उसकी खातिरदारी करती थी। डाक्टर साहब तो घर में रहते हुए भी घर की किसी बात से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे, पर वे भी महेन्द्र की कद्र करते थे। वीणा ने इन सारी बातों में एक षड्यंत्र की गन्ध पाई, और बिना कारण वह महेन्द्र से कुछ अकड़कर रहने लगी। उसने महेन्द्र के विरुद्ध कोई भी बात नहीं पाई। महेन्द्र अपने कमरे में ही रहता था, जब तक बुलाया नहीं जाता था तब तक बैठने या खाने के कमरे में नहीं आता था, सत्यभामा के साथ वह खूब बातें करता था, पर वीणा जब तक नहीं बोलती थी तब तक नहीं बोलता था। ऐसे व्यक्ति से झगड़ा करना तो सम्भव नहीं था। फिर भी उसे जिस षड्-यन्त्र की बू आ रही थी, उसके कारण वह महेन्द्र से खिंची-खिंची रहती थी। और अपनी मां से भी नाराज़ रहती थी।

जब वीणा ने देखा कि महेन्द्र पन्द्रह-बीस दिन हो गये, फिर भी यहां से जाने का नाम नहीं ले रहा है, तो उसने अपनी छुट्टी के दिन दोपहर के समय सत्यभामा से पूछा—ये साहब कब तक रहेंगे ?

सत्यभामा ने वीणा को ध्यान से देखा, फिर बोली—यह तो तुम पर निर्भर है।

—मुझ पर निर्भर है ? मैं उनको बुलाने नहीं गई—वीणा ने कुछ अधिक झुंझलाहट के साथ कहा। मन-ही-मन वह समझ गई कि जिस षड्यन्त्र की उसे आशंका थी, वह प्रमाणित हो गया।

सत्यभामा बोली—कोई किसी को बुलाने नहीं जाता। तुमने नहीं बुलाया, तो मैंने भी नहीं बुलाया। पढ़ाई के परिश्रम से थककर वह

कहीं पर छुट्टियां बिताना चाहता था, यहां आ गया। मैंने भी जब देखा-सुना, पसन्द आया, तो रोक लिया।

वीणा पहले से अधिक झुंझला गई। बोली—तुमने मुझसे राय नहीं ली, मुझे आये हुए इतने दिन हो गए फिर भी मुझे कुछ नहीं बताया। मैं साफ-साफ कहे देती हूं कि इस भले आदमी को जाने दो, और आगे से मेरे सम्बन्ध में कोई चिन्ता न किया करो।

सत्यभामा इतनी आसानी से दबनेवाली नहीं थी। उसने कहा—वीणा अब तुम बड़ी हो गई हो, ऐसे मौके रोज़-रोज़ नहीं आते, लड़का सब तरह से लायक जान पड़ता है। तुम्हारे पापा को भी यह पसन्द है। इसलिए इस मौके को हाथ से जाने न दो। आखिर तुम चिरकुमारी तो नहीं रहोगी न ?

वीणा ने बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से कहा—मैं आगे क्या करूंगी नहीं करूंगी इसका अन्तिम निर्णय न तो कर पाई हूं, और न अभी करना ही चाहती हूं। सम्भव है पापा का कहना मानकर डाक्टरी पढ़ने लगूं, पर जो भी करूं या न करूं यह तो निश्चित है कि मिस्टर महेन्द्र के साथ में शादी नहीं करूंगी।

कहकर वह झट से वहां से उठकर अपने कमरे में चली गई। ऐन दरवाज़े के पास उसने महेन्द्र को देखा। एक बार उसके मन में उड़ता हुआ सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं महेन्द्र खड़े-खड़े उन लोगों की बात-चीत सुन तो नहीं रहा था। इस आशंका से वह मन-ही-मन कुछ सिकुड़ गई, पर अगले ही क्षण वह सीटी बजाती हुई अपने कमरे के गुसलखाने में घुस गई। इस समय वह सोच रही थी कि महेन्द्र ने सुन लिया तो सुन लिया, उसे बहुत पहले ही यह बात मालूम हो जानी चाहिये थी। ऐसा सोचकर उसका मन कुछ शान्त हुआ। वह अपने मन में उन शब्दों को याद करने लगी जिन्हें उसने मम्मी के साथ बातचीत करते हुए अभी-अभी इस्तेमाल किया था। साथ-ही-साथ वह

अकारण टुथब्रश लेकर दांत मांजने लगी यद्यपि इस समय उसका कोई मौका नहीं था।

सन्ध्या समय रोज़ की तरह वह बाहर गई। उस दिन सुरेन्द्र मोहन से मिलना नहीं था, इसलिये वह एक सहेली के घर गई। जब वह लौटी तो उसने देखा कि महेन्द्र का बिस्तर बंधा हुआ बाहर रखा है, और चल देने की तैयारी हो रही है। उसका दिल धक-से हो गया, और यद्यपि महेन्द्र के प्रति उसके मन में कोई कोमल भावना नहीं थी, फिर भी उसे बुरा लगा कि महेन्द्र इस प्रकार चला जा रहा है। वह समझ गई कि महेन्द्र ने जरूर उसकी बातों को सुन लिया है, और उसी के फलस्वरूप यह अचानक यात्रा है।

सत्यभामा और महेन्द्र खाने के कमरे में थे। एक बार उसने सोचा कि वहां पहुंचे, पर उसे कुछ लज्जा-सी मालूम हुई और वह चुपचाप अपने कमरे में बैठी रही। पर्दे को इस प्रकार डाल लिया कि बाहर से मालूम न हो कि वह कमरे में है। यद्यपि वह एक पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ने का बहाना करती रही, फिर भी उसके कान और सारा ध्यान बाहर की ओर लगा हुआ था। खाने के कमरे में अब खाना समाप्त हो चुका था। अब महेन्द्र मुंह धो रहा था। सत्यभामा बराबर उससे बात-चीत करती जा रही थी। फिर दोनों बाहर आये यह साफ मालूम हुआ। सत्यभामा ने नौकर से कुछ पूछा, क्या पूछा यह तो सुनाई नहीं पड़ा, पर नौकर का उत्तर सुनाई पड़ा : 'अभी वह नहीं लौटी'। तो यह प्रश्न उसी के सम्बन्ध में था। एक बार उसकी इच्छा हुई कि बाहर जाकर खुद ही कहे कि मैं तो मौजूद हूं, पर जब उसने सोचा कि सामने होलडाल तथा सूटकेस देखकर उसे पहले ही खाने के कमरे में जाना चाहिये था, तो उसने यही निश्चय किया कि बाहर न जावे। थोड़ी देर में सत्यभामा और महेन्द्र बाहर निकले, और थोड़ी देर बाद मोटर ने हार्न दिया, और सत्यभामा घर के अन्दर लौट आई। वीणा ने देखा कि महेन्द्र तो खैर जा चुका, अब यदि सत्यभामा को मालूम

हुआ कि वह घर पर ही बैठी रही, और विदाई के समय बाहर निकल-कर भी नहीं आई, तो वह बहुत बिगड़ेगी। इसलिये वह पांव दबा-कर अपने गुसलखाने के दरवाज़े से बाहर निकल गई, और दो मिनट बाद चटर-मटर करती हुई बंगले के मुख्य दरवाज़े से इस प्रकार अन्दर दाखिल हुई कि सत्यभामा की नज़र उस पर पड़ जाय। जैसा वह आशा करती थी वैसा ही हुआ। सत्यभामा ने उसे पुकार कर बताया कि किस प्रकार महेन्द्र को एकाएक एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि उसके पापा बीमार हैं, इसलिये वह चला गया।

वीणा को असली कारण तो मालूम था, बोली—तुमने उनका पत्र देखा?

—नहीं नहीं, पत्र क्यों देखती? उसने कहा पत्र में ऐसा लिखकर आया है, बस मैंने सारी तैयारी कर दी।

वीणा कुछ देर तक कुछ बोली नहीं। फिर बोली—यह अच्छा ही हुआ कि वे चले गये। जो बात होनी नहीं है, उसके पीछे पड़ने से यही अच्छा है कि उससे दूर रहा जाय।

सत्यभामा अब तक कुछ कातर स्वर में बातचीत कर रही थी। उसे सचमुच दुःख था कि यह लड़का हाथ से निकल गया, उसने लड़के को दिल से पसन्द किया था। वीणा की इस बात से वह झुंझला गई। बोली—तू क्या समझती है कि तुझसे शादी करने का इरादा लेकर वह यहां आया था? उसे तो मालूम भी नहीं था कि तू यहां पर है। तू अपने को बहुत ज्यादा समझने लगी है। उसके मन में तो शादी करने का बिल्कुल इरादा ही नहीं है। आज उसने मुझे साफ-साफ कहा कि वह शादी करने का कोई विचार नहीं रखता।...

इसी प्रकार से वह और भी बहुत-कुछ कह गई। पर वीणा कुछ नहीं बोली। वह केवल इस बात पर सोचने लगी कि महेन्द्र ने आज ही यह बात क्यों कही कि वह शादी करने का इरादा नहीं रखता। अब तक तो उनके विचार इस प्रकार के नहीं थे, बल्कि ऐसा विश्वास

करने का कारण था कि वह इस बात को भली भांति समझता था कि सत्यभामा उसका इतना आदर-सत्कार क्यों कर रही है। उसने मम्मी के कटु वचनों का कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ गम्भीर हो गई। उसे अफसोस हो रहा था कि उसने दोपहर के समय उतने कठोर शब्दों का प्रयोग क्यों किया ? अवश्य वह नहीं जानती थी कि महेन्द्र खड़े-खड़े मां-बेटी की बातें सुन रहा है। उसे प्रत्याख्यान तो करना ही था, पर इतने कठोर शब्द न कहती तो क्या हो जाता। हां उसे अब अपने शब्द कठोर ही ज्ञात हो रहे थे।

सत्यभामा कह रही थी—अभी तू आदर्शवाद के काल्पनिक प्रवाह में पड़कर यह समझ रही होगी कि किसी मजनू से साबका पड़ेगा तो तेरा उद्धार हो जायेगा। पर जीवन के कठोर सत्यों से अभी तू अपरिचित है। तब की बार तेरे पिता के वह अंग्रेज मित्र आये थे, तो मैंने तुझे अपना कमरा छुड़वा दिया और कोनेवाले कमरे में रखा, जिसमें मिला हुआ गुसलखाना नहीं है। सात ही दिनों में तुझे इतनी तकलीफ हुई कि बीमार पड़ने की नौबत आ गई। उसी समय मैं समझ गई कि कुछ आराम की तू इतनी आदी हो गई है कि उन्हें कदापि छोड़ नहीं सकती। मैंने इस लड़के को इसके स्वभाव के लिए तो पसन्द किया ही, साथ-ही-साथ इसलिए पसन्द किया कि वह तुझे जिन्दगी की उन सब जरूरतों को दे सकेगा, जिनके बगैर तू जी नहीं सकती। यह नहीं कि आदर्शवादी लड़कियां दुनिया में नहीं हैं, पर तू उनमें नहीं है। अब आगे मैं तेरी शादी के मामले में नहीं पड़ूंगी। तू जाने और तेरे पापा, मैं तो ' र के किसी मामले में नहीं रहूंगी।—कहकर उसने लड़की की तरफ से मुंह फेर लिया।

वीणा ने आगे तर्क-वितर्क करना उचित नहीं समझा, और उठकर वहां से चली गई। मां ने उसे जो चुनौती दी थी, उसे उसने मन-ही-मन स्वीकार कर लिया वह तो जानती थी कि अपने मजनू को उसे ढूंढना नहीं है, वह तो उसे प्राप्त ही हो चुका है। इस प्रकार सोचने

पर भी उस के मन में एक कांटा-सा खटक रही थी, जिसे वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या है।

: १३ :

यद्यपि रूपा पन्द्रह दिनों के अन्दर ही लाला दीनानाथ की हवेली से बहुत सा सामान ढुलवा चुकी थी, फिर भी उसके मन में तृप्ति नहीं थी। बात यह है कि हाथों-हाथ केवल छोटी-मोटी चीज़ें ही जा सकती थीं। यहां तो एक-से-एक दरी, कालीन, सोफे, आलमारियां, सिंगारदान आदि थीं, जिनको देखकर रूपा की जीभ में हर समय पानी आया करता था। एक दिन उसने एक छोटा-सा कालीन लपेटकर एक तरफ रख दिया। उसकी जगह पर एक पुराना कालीन बिछा दिया। यह केवल इस बात को देखने के लिए था कि किसी का ध्यान इस तरफ जाता है या नहीं। देखा कि इस तरफ किसी का ध्यान नहीं गया। तब उसने एक दिन रात को कृष्णकुमार से कहा—तुम इसे ले जाओ। मुझे यह बहुत पसन्द आया है।

कृष्णकुमार को इसके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं था, उसने उस गट्ठर को उठाते हुए कहा—यह तो कम-से-कम पाँच सेर का होगा। जेब में तो जा ही नहीं सकता—कहकर उसने गट्ठर को जमीन पर रख दिया, बोला—इसमें क्या है?

रूपा बोली—यह वह फूलदार कालीन है, जो पीछे के कमरे में बिछा रहता था। मुझे यह बहुत पसन्द है।—कहकर उसने शायद पति को प्रलोभन दिखाने के लिए कहा—यह तुम्हारे कमरे में बिछेगा तो बहुत सुन्दर मालूम होगा।

पर कृष्णकुमार ने जो उस गट्ठर की तरफ देखा, तो उसने मुँह बनाते हुए कहा—यह काम अच्छा नहीं। कहीं किसी ने देख लिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

रूपा सब तरह से तैयार थी, बोली—कौन-सा काम अच्छा नहीं? चोरी जैसे एक पैसे की, वैसे ही हजार रुपये की। अब तक कैसे इतनी चीज़ें ले गये। यह कहो कि हिम्मत नहीं पड़ती तो बात और है।—कहकर उसने मुँह फुला लिया।

कृष्णकुमार अपनी पत्नी से बहुत दबता था, वह समझ गया कि आज खैर नहीं है, फिर भी उस पंचसेरा गट्ठर को देखकर उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। बोला—चाहे जो-कुछ समझो, मैं तो इस गट्ठर को ले नहीं जा सकता। तुम तो बेकार की जिद करती हो। कहीं पकड़ा गया तो लाला दीनानाथ जेल की हवा खिलाये बिना नहीं छोड़ेगा। इससे तो अच्छा है कि राधा से या लालाजी से यह मांग लिया जाय।

रूपा ने पहले से अधिक तैश में कहा—समझते होगे कि तुम्हारी बहन तुम्हारी बड़ी कद्र करती है। मैं ही हूं जो यहां टिकी हुई हूं। तुमने सालों तक उसे पाला पोसा, पर उसे पन्द्रह दिन ही भारी हो रहे हैं। मुझसे तो महारानी जी खार-सी खाई रहती हैं। मांगने से यहां कुछ मिलना होता, तो फिर बात ही क्या थी—कहकर वह एकाएक स्वर चढ़ाकर अल्टीमेटम-सा देती हुई बोली—तुम यह सीधे-सीधे बताओ कि इसे तुम ले जाओगे या नहीं। मैं बेकार की बात पसन्द नहीं करती।

कृष्णकुमार बड़े असमंजस में पड़ा। उसने उस गट्ठर को उठाया। देखा कि वज़न जितना है वह तो है ही, देखने में यह काफी बड़ा है, और इसे छिपाकर ले जाया नहीं जा सकता। उसने उस गट्ठर को खोला कि देखे कि इसे और छोटा किया जा सकता है कि नहीं, पर उसने देखा कि रूपा ने उसे जितना छोटा किया था, वह उससे छोटा

नहीं कर पाया। तब उसने अपने स्वर को करुण बनाते हुए कहा—तुम ही देखो कि इसे कोई भला आदमी कैसे ले जा सकता है। नौकर चाकर हैं, राधा है, फिर लाला दीनानाथ हैं, न मालूम कौन किस समय उसे देख ले तो आफत ही आ जाये। तुम्हारे लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूं, पर यह काम मुझसे नहीं होगा।

रूपा ने देखा कि सख्ती से काम नहीं बनेगा तब उसने पहले से आवाज़ धीमी करते हुए कहा—तुम नौकर चाकरों से डरो मत। मैं सब को उस समय काम में लगा दूंगी। राधा उधर न देखे इसकी भी व्यवस्था कर लूंगी।

कृष्णकुमार समझ गया कि किसी तरह बचत नहीं है, बोला—कहीं लाला दीनानाथ आ गये तो?

—बस एक यही बात है जिस पर किसी का वश नहीं। वह तो पागलों की तरह न मालूम कब आये जाय इसका कुछ पता नहीं लगता।

—तो फिर?—तिनके का सहारा लेते हुए अपनी जान में डूबते हुए कृष्णकुमार ने कहा।

पर उधर से कोई रियायत नहीं हुई। बोली—मर्द हो, शर्म नहीं आती? मैं जो मर्द होती, तो दिखा देती कि हिम्मत किसे कहते हैं। तुम तो गमले के पानी में ही डूब रहे हो!

अन्त तक कृष्णकुमार को राज़ी होना पड़ा। यह तय हुआ कि अगले दिन जिस समय भी मौका लगेगा कृष्णकुमार इस गट्ठर को उठाकर चलेगा, और हवेली से बाहर ही टांगा रिक्शा जो-कुछ भी मिलेगा, उसमें बैठकर चल देगा।

जब अगले दिन कृष्णकुमार पांच बजे दफ्तर से लौटा, तो रूपा ने सिगनल दे दिया, और कृष्णकुमार जैसे-तैसे उस दससेरा गट्ठर को बगल में दबाकर चला। वह ऐसा केवल यन्त्रचालित की तरह कर रहा था। उस समय यदि कोई उसके पास आकर केवल जोर से छींक

भी देता तो वह बेहोश हो जाता। पर खैरियत यह हुई कि सारा काम सुचारु रूप से हुआ। वह बंगले के हाते के बाहर निकला ही था कि उधर से खाली टांगा भी आता हुआ दिखाई दिया, और कृष्णकुमार तांगे की सीट के नीचे कालीन के गट्ठर को रखकर उस पर बैठ गया और तांगा चलवा दिया। बड़ी देर के बाद कृष्णकुमार को ठीक से सांस आई।

तांगा एक सौ कदम चला ही था कि उलटी तरफ से लाला दीनानाथ कार पर आते हुए दिखाई पड़े। पर कृष्णकुमार को कुछ भी हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई। गट्ठर सीट के नीचे इस प्रकार से रखा हुआ था कि उसके बाहर से दीखने की कोई सम्भावना नहीं थी। इस लिए वह अकड़कर तांगे पर बैठा रहा। फिर भी उसने कार की तरफ से मुंह फेर लिया। पर कार एकाएक रुक गई, और लालाजी ने उतरते हुए पुकारा—कृष्णकुमार, कृष्णकुमार कहां जा रहे हो?

कृष्णकुमार का दिल धक से हो गया। तांगे वाले ने तांगा रोक दिया। कृष्णकुमार ने लपक कर उतरते हुए कहा—यहीं जरा एक दोस्त के यहां जा रहा था।

—तुम तो अभी दफ्तर से आये होगे?

—जी हां, आते ही खबर मिली कि दोस्त बीमार है, इसी लिए भागा जा रहा हूं...

—अच्छा अच्छा, कोई बीमार है। आओ कार पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें अभी पहुंचाये देता हूं।

कृष्णकुमार ने गट्ठर की बात सोची, बोला—जी नहीं, आप क्यों तकलीफ करेंगे? मैं तांगे पर चला जाऊंगा—कहकर उसने तांगे की तरफ एक कदम बढ़ाया।

पर लाला दीनानाथ बोले—कोई बात नहीं, इसमें मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। अगर तुम्हें मेरी तकलीफ का ज्यादा ध्यान है, तो लो मैं तांगे पर जाता हूं और तुम कार पर जाओ। आखिर बीमारी का तकाजा सबसे बड़ा है।

यह प्रस्ताव सुनकर कृष्णकुमार बहुत घबड़ाया, बोला—नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। बहुत मामूली बीमारी है, मैं तांगे पर जाता हूं—कहकर वह तांगे के पायदान पर पैर रखने लगा। पर लाला दीनानाथ बोले--नहीं, नहीं तुम कार पर बैठ जाओ, मैं तांगे पर जाता हूं।

कृष्णकुमार ने सोचा कि यदि लाला दीनानाथ तांगे पर घर जाते हैं तब तो चोरी बिल्कुल खुल जाती है। इसलिए उसने बात बदलते हुए कहा—जब आप रोगी पर इतनी दया की भावना रखते हैं, तो साथ ही चले चलिए। कुछ भी हो आप तजुर्बेकार हैं, कुछ सलाह तो दे ही सकेंगे।

ऐसा कहकर वह जल्दी से कार पर सवार हो गया। तांगे वाले ने पीछे से कुछ कहा। पर उसने ऐसा रुख बना लिया मानो बहरा हो गया हो। जब कार चल निकली, तब उसके मन में चिन्ता उत्पन्न हुई कि बीमार तो कोई है नहीं, अब कहां चला जाय। वह बड़े असमंजस में पड़ा। कार की गति सुनसान जगह पाकर २० से २५ चढ़ चुकी थी, और बढ़ती ही जा रही थी। ड्राइवर ने पूछा तो उसने सामने की तरफ इशारा कर दिया। कार तो उड़ती हुई जा रही थी, और इधर कृष्ण-कुमार की घबड़ाहट बढ़ती ही जा रही थी। एकाएक उसे याद आया कि उसके दफ्तर का एक बाबू इधर रहता है। बस उसने कार ले जाकर उसी के घर पर खड़ी कर दी। स्वयं भीतर चला गया, और लालाजी से बोला—आप ठहरें, मैं अभी आता हूं...

लालाजी ने कहा—मैं भी चलता हूं—पर तब तक कृष्णकुमार भीतर जा चुका था। अतएव लालाजी को बाहर खड़े होकर प्रतीक्षा करनी पड़ी।

उधर कृष्णकुमार भीतर गया तो उसके मित्र ज्ञाननाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह कभी उसके घर पर नहीं आता था। कृष्णकुमार परिस्थिति समझ गया, बोला—भई जल्दी से कोई चीज़ ओढ़कर लेट

जाओ, कारण बाद को बताऊंगा। बहनोई साहब तुम्हें देखना चाहते हैं।...

ज्ञाननाथ कुछ प्रतिवाद-सा करना चाहता था, पर कृष्णकुमार इतना विचलित दिखाई पड़ता था, और साथ ही उसने ऐसा नम्र बल्कि प्रार्थनासूचक चेहरा बनाया कि ज्ञाननाथ झट से कम्बल ओढ़कर अपने बिस्तरे पर लेट गया। कृष्णकुमार बिना प्रतीक्षा किये ही बाहर निकल गया, और रुआंसा चेहरा बनाकर लालाजी से बोला—आइए!....

लालाजी साथ में आते हुए बोले—क्या कोई संगीन बीमारी है?

कृष्णकुमार ने चेहरे को पूर्ववत् रुआंसा कायम रखते हुए कहा—कुछ समझ में नहीं आता—कहकर व्यथित रोगी के कमरे में दाखिल होते हुए बोला—यों न तो कोई बुखार है, और न कोई और लक्षण है, पर कहता है कि दिल बैठा जा रहा है।

ज्ञाननाथ धीरे-धीरे कराहने लगा था। लालाजी ने उसे ध्यान से देखा, बोले—किसी डाक्टर को दिखाया?—कहकर उन्होंने रोगी की कलाई को अपने हाथ में लिया। बोले—बुखार तो है नहीं।

ज्ञाननाथ कराहते हुए बोला—जी हां, बुखार आता, तब तो मैं अच्छा हो जाता। यह तो कोई भीतरी बीमारी है।

—कोई इलाज हो रहा है?

ज्ञाननाथ ने कृष्णकुमार की ओर देखा। कृष्णकुमार ने उसकी तरफ से कहा—गरीब आदमी है, इलाज कहां से होता? चिरेता उरेता पी लेता है, और कभी रोग ने बहुत जोर किया तो मैं आकर होम्योपैथी की दवा ला देता हूं।

—तो रोग पुराना है?

कृष्णकुमार समझ गया कि चाल कुछ गलत पड़ गई क्योंकि वह यह सोच रहा था कि लालाजी से कुछ वसूल किया जाय, रोग पुराना होने पर उसमें बाधा पड़ सकती थी क्योंकि लालाजी समझते कि कोई खतरनाक रोग नहीं है। बोला—जी हां एक हफ्ते से चल रहा है।

लालाजी बोले—पर इसका इलाज तो होना चाहिए।

—जी हां, कोई होम्योपैथी की दवा ले आऊंगा।

लालाजी बोले बाहर चलो सलाह करेंगे।

कृष्णकुमार यही चाहता था। दोनों रोगी को ढाढ़स बंधाकर बाहर चले गए। बाहर निकलते समय लालाजी की आंख बचाकर कृष्णकुमार ने ज्ञाननाथ को एक इशारा किया जिसका अर्थ था अब खूब नाचो-कूदो।

थोड़ी ही देर में कार रवाना हो गई और कृष्णकुमार भीतर आया, बोला—कभी-कभी ऐसी अजीब विपत्ति पड़ जाती है कि कुछ कहा नहीं जाता। कल रात को मैं जरा यों ही तफरीह के लिए मुजरा सुनने गया था। वहीं पर नींद आई, तो रात को उधर ही सो गया। जो घर में लौटा तो एकदम लड़ाई छिड़ गई। लड़ते-लड़ते बिना खाये-पिये दफ्तर चला आया। मैं यही कहता रहा कि दोस्त बीमार था, उसी के यहां रह गया। जब दफ्तर से लौटा तब भी वातावरण शान्त नहीं था। मैं अपनी टेक पर डटा रहा। इतने में यह बहनोई साहब आ गए। तब यह तय हुआ कि वे हमारे साथ आकर सारी बातों की तसदीक करें। तुमने आज मुझे बहुत बचाया।

इस पर दोनों ने बहुत कहकहा लगाया। कृष्णकुमार बोला—पर अब मैं चलता हूं।....कहकर दोनों ने फिर कहकहा लगाया। कृष्ण-कुमार कमरे से निकलते समय बोला—दवा खुद पी लेना।

फिर कहकहा लगा।

पर यद्यपि कृष्णकुमार हंस रहा था, और उसने अपने मित्र के इलाज के बहाने अभी लालाजी से तीस रुपये लिए थे, फिर भी उसके मन में कालीन की चिन्ता सर्वोपरि थी। कालीन जाय तो जाय, पर एक तो डर यह था कि कहीं तांगे वाला ईमानदार हुआ, और लौटकर घर पहुंचा तो बड़ी आफत होगी। यदि तांगेवाला बेइमान हुआ, और कालीन लेकर चला गया, तो रूपा को जवाब देते-देते आफत पड़ जायगी। वह न तो कोई बात सुनेगी, और न कोई तर्क उस पर असर

करेगा, बस गालियां देती जायगी। वह इन्हीं बातों को सोचकर जल्दी-जल्दी घटनास्थल पर पहुंचना चाहता था कि यदि सम्भव हो तो परिस्थिति को संभाले। लालाजी के घर से यह जगह पांच मील की दूरी पर थी। इस कारण उसने फिर एक तांगा लिया, और तांगेवाले से जल्दी चलाने के लिए कहता हुआ उस पर बैठ गया।

: १४ :

कृष्णकुमार जिस समय लाला दीनानाथ के घर पर पहुंचा, उस समय रात हो चुकी थी, इस कारण लोगों की आंख बचाकर बंगले में घुसना कोई कठिन बात नहीं थी। उसने बंगले से काफी दूरी पर तांगा छोड़ दिया, और चोर की तरह चौकन्ना होकर बंगले के अन्दर दाखिल हुआ। वह हर कदम पर किसी विपत्ति की आशंका करता था। वह मन-ही-मन डर रहा था कि मान लो कोई विपत्ति नहीं हुई, और तांगेवाला कालीन लेकर लापता हो गया, तो भी वह रूपा से क्या कहेगा। अपने बुद्धिबल से वह अत्यन्त विपत्तिजनक परिस्थिति में पड़ते हुए भी तांगेवाले के हाथ से बचा, फिर उसने लाला दीनानाथ को उल्लू बनाया, यहां तक कि उनसे तीस रुपये भी ले लिए, ज्ञाननाथ को चकमा देकर उससे पिंड छुड़ाया, पर रूपा के सामने क्या होगा इस सम्बन्ध में उसकी बुद्धि काम नहीं देती थी। वह तो इस बात को समझेगी नहीं कि किस प्रकार की परिस्थितियों से बचकर वह निकल आया है। वह तो न आव देखेगी न ताव, और पता नहीं क्या-क्या कहे। एक बार उसने सोचा कि कह दे कि कालीन घर में पहुंचा आया, इससे इस समय

तो शान्ति हो जाती थी, पर आगे जब रूपा को पता लगता तो चौगुनी आफत आती।

उसने बंगले में घुसकर देखा कि जिन-जिन कमरों में रोज बत्ती जलती है, उनमें बकायदा बत्ती जल रही है। उसे जो कमरा दिया गया है, उसमें भी बकायदा रोशनी थी। उसका मन कुछ आश्वस्त हुआ कि चलो चोरी पकड़ी नहीं गई, पर कालीन के सम्बन्ध में जो जवाब देही करनी पड़ेगी, उसे सोचकर उसकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई। उसने मन को बहुत कड़ा किया यदि वह डांटा जायगा, तो वह भी बिगड़ खड़ा होगा, और साफ कह देगा कि उससे यह सब चोरी-ओरी का काम नहीं होगा।

इस प्रकार से तरह-तरह से मन को दृढ़ कर वह अपने लिए निर्दिष्ट कमरे से घुसा। रूपा जैसे उसी की प्रतीक्षा कर रही थी, खुश होकर बोली—हो गया ?

—अभी बताता हूं—कहकर कृष्णकुमार ने कपड़े बदलने की तैयारी की।

रूपा ने कुछ उद्विग्न होते हुए पूछा—पहुंच गया ?

—बस यही समझो कि पितरों का पुण्य था, नहीं तो सब समेत जेलखाने में दाखिल हो जाते—परमाणु बम-सा छोड़ते हुए कृष्णकुमार ने कहा।

—क्यों ? क्यों ? मैंने तो देखा कि तुम सही सलामत तांगे में चढ़ गये, आगे क्या विपत्ति हुई ?

—उधर से लालाजी मोटर पर आये, और उन्होंने सरेदस्त कालीन पकड़ लिया। मुझे कार पर बैठाकर थाने ले जा रहे थे कि मैंने उनका बहुत निहोरा किया, तब उन्होंने इस शर्त पर मुझे छोड़ा कि मैं कल सवेरे ही यह घर छोड़ दूंगा।

—अरे यह तो बहुत बुरा हुआ। अभी तो कई चीज़ें ले जानी थीं।

कृष्णकुमार अल्टीमेटम-सा देता हुआ बोला—मैं तो कल सवेरे

चला, तुम रहकर चीज़ें ले आओ या ले जाओ, जी चाहे सो करो। मैंने तो कान पकड़े कि कभी ऐसा काम नहीं करूंगा—कहकर वह शायद अपनी दृढ़ता दिखाने के लिए एक कुर्सी पर धम से बैठ गया, और यद्यपि वह मूंछें मरोड़ने का आदी नहीं था, मूंछे मरोड़ने लगा।

रूपा ने पूछा—कालीन का क्या हुआ ?

—कालीन का क्या हुआ सो मैं क्या जानूं। जिसकी चीज़, उसके हाथ लग गई, फिर मैं क्या करूं। यहां तो यही समझकर चले आये कि जान बची लाखों पाये। तुम्हें अभी तक कालीन की फिक्र हो रही है, यह नहीं सोचा कि हम बचकर लौट आये यही बहुत है, नहीं तो पुरखों का नाम डूब जाता। चोरी में पकड़ा जाना, और सो भी बहनोई के घर में चोरी—कहकर उसने मुंह बना लिया। मन ही मन वह हंस रहा था कि आज रूपा को उसने खूब ठीक किया कि वही उस पर हावी हो रहा है। कहीं सच बोल देता तो आफत ही थी। बेवकूफ, बुद्धू और न मालूम क्या-क्या विशेषण प्राप्त होते।

रूपा बोली—लालाजी लौटकर मुझसे मिले थे, उन्होंने तो इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

कृष्णकुमार इस प्रश्न के लिए तैयार था, बोला—जब मुझसे सारी बात हो गई तो तुमसे क्या कहते ? उनसे तो यहीं तय था कि वे किसी से कुछ न कहेंगे।

इस पर रूपा को कुछ सूझा नहीं कि वह क्या कहे। कृष्णकुमार की बात बिल्कुल उचित मालूम देती थी। कृष्णकुमार की बदनामी से लालाजी की भी तो बदनामी थी।

बोली—तो कल यहां से चल देना है ?

कृष्णकुमार को एकाएक स्मरण हो आया कि सचमुच कल यहां से चले गये तो अपना खर्च बढ़ेगा। इसलिये उसने कहा—अभी तक तो यही तय है, पर कल फिर और बातचीत करूंगा, शायद लालाजी रहम खा जायं।

रूपा ने कहा—तो मैं ही कल कुछ बात करूं ?

इस बात पर कृष्णकुमार एकदम से खड़ा हो गया जैसे किसी बड़े भारी अनर्थ की सूचना हुई हो, बोला—राम राम कहीं भूलकर भी इस सम्बन्ध में तुम उनसे या राधा से बात न करना। तय तो यही हुआ है कि मैं तुमको न बताऊं, और वे राधा को न बतावें। रही यहां रहने की बात, सो मैं कल फिर उनसे बात करूंगा। पर तुम ऐसी बनी रहो कि तुम्हें इस सम्बन्ध में कुछ मालूम हो नहीं है। इस सम्बन्ध में तुमने गलती की कि मैं मारा गया।

—लालाजी ने तो यह कहा कि तुम्हारे कोई दोस्त बीमार हैं और शायद तुम रात को न आ सको...

—अच्छा ऐसा कहा—कहकर कृष्णकुमार कुछ देर कमरे में इधर से उधर घूमता रहा, फिर जैसे अपने मन में ही बात कर रहा हो बोला—मैं रात नहीं लौटूंगा। इसका मतलब यह हुआ कि मुझे क्षमा कर देने के बाद भी उनके मन में यह बात थी कि मुझे हवालात भिजवा दें। नहीं तो मैं और रात को न लौटूं, कभी ऐसा हुआ तुम्हीं बताओ। न मालूम किस कुक्षण में कालीन वाली बात तुम्हारे मन में आई। तुम तो यहां शान्ति से बैठी हो, इस बीच में मुझ पर क्या गुज़रा यह मैं ही जानता हूं। अब इतनी कृपा रखो कि लालाजी से इस सम्बन्ध में कोई बात न करो। मुझसे उन्होंने पूछा था कि यह कालीन की चोरी की बात तुम्हें मालूम है या नहीं...

बीच में ही बात काटकर रूपा ने पूछा—तुमने इसके उत्तर में क्या कहा ? कहीं तुमने मुझे तो नहीं साना ? उनके मन में मेरे लिये बहुत अच्छे विचार हैं।

—मैंने सत्य बता दिया।

—तुमने सत्य बता दिया ? क्या मतलब ? क्या तुमने यह कहा कि इस काम में मेरा हाथ था ?

कृष्णकुमार आज बिल्कुल रूपा को अपने पैरों में गिराना चाहता

था वर्षों का उसका विद्रोह एकाएक मौका पाकर भड़क उठा था। बोला —मैंने यही कहा कि तुमने कालीन को बांधकर मेरे हाथों में दिया था...

रूपा जलकर बोली—तुम इतने नीच और कायर हो...

—पहले बात तो सुन लो। मैंने यह कहा था कि तुमने यही समझ कर मुझे कालीन दिया था कि मैं उसे लालाजी की आज्ञा से धुलाने ले जा रहा हूं।

इस बात को सुनकर रूपा आश्वस्त हुई। उसने पूछा—तो वे हमें आगे इस मकान में रहने देने पर राजी हो जायंगे?

—होंगे क्यों नहीं? वे यों ही हमें यहां रहने थोड़े ही दे रहे हैं। उन्हें अपने लड़कों से भय है, इसी कारण वे हमें रहने देते हैं। और कुछ भी हो वे समझते हैं कि मौके पर हम उनसे उनकी रक्षा करेंगे।

इन बातों से रूपा खुश न हो सकी। लम्बी सांस भरती हुई बोली —कालीन बिल्कुल हाथ में आकर निकल गया। अपने घर में वह तुम्हारे कमरे में बहुत खिलता...

कृष्णकुमार ने कहा—जो हुआ सो हुआ, अब वैसी बातों में नहीं पड़ना चाहिये। ईश्वर को देना होगा तो खुद ही देंगे।

—वे कोई अपने हाथ से थोड़े ही देते हैं।

—अपने हाथ से क्यों नहीं देते? अगर मान लो राधा को लड़का हो जाय, तो जायदाद की एक तिहाई यों ही अपने हाथों में आयेगी। —कहकर उसने एक बार चारों तरफ देखा, और स्वर नीचा करके बोला —लालाजी कितने दिन के हैं, फिर राधा को झख मारकर हमारी शरण में आना पड़ेगा।

—पर लड़का होने का क्या ठिकाना? दूसरे जब उसे जायदाद मिल जायगी तो तुम्हारी बहन तुम्हें तो पास भी नहीं फटकने देगी। अभी जायदाद नहीं मिली, फिर भी देखो कि धरती पर पांव नहीं पड़ते।

कृष्णकुमार ने इस प्रसंग को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा।

उसने फिर से पुराने प्रसंग पर आते हुए कहा—देखो लालाजी या राधा से कहीं कालीन का प्रसंग छेड़ न देना, नहीं तो सब बना-बनाया खेल बिल्कुल बिगड़ जायेगा।

—मुझे क्या गरज पड़ी है—कह कर रूपा ने फिर भी अपना ही महत्व कायम रखा।

उस रात को प्रसंग वहीं पर समाप्त हो गया। पर कृष्णकुमार के मन में कालीन का अफसोस रूपा से कम नहीं था। सवेरे उठकर ही वह चहलकदमी के बहाने तांगों के स्टेन्ड पर पहुंचा, पर वहां उस तांगे का कुछ पता नहीं लगा। वह स्टेन्ड से लौट ही रहा था कि लालाजी का सामना हो गया। लालाजी ने उसके बीमार मित्र का हाल पूछा, तो वह बोला—अभी वहीं से आ रहा हूं। दवा से कुछ फायदा पहुंचा है।

लालाजी ने कहा—मुझे रोगी की परिस्थिति से परिचित रखना। कुछ रुपये-पैसे की जरूरत हो तो ले लेना।

कृष्णकुमार ने शर्माते हुए कहा—जी इलाज कराने के लिए रुपयों की जरूरत तो पड़ेगी ही।

लालाजी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारा मित्र मेरा ही मित्र है।

: १५ :

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप दिन के बारह बजे एक काल से लौटकर कन्सल्टेशन के लिए आये हुए दो रोगियों को निपटा रहे थे कि इतने में उनका एक कर्मचारी उनसे बोला—बाहर दो-तीन सज्जन कार पर

आये हुए हैं। मैंने उनको यहां आने के लिए कहा तो वे बोले कि वे आपसे अलग मिलना चाहते हैं।...

डाक्टर साहब के कान एकदम खड़े हो गये। उन्होंने उत्सुकता से पूछा—ये पहले कभी आये थे ?

—नहीं। मेरे सामने तो कभी नहीं आये थे। कार भी बाहर की है।

—अच्छा—कहकर डाक्टर साहब ने कुछ सोचा, फिर बोले—उन से जाकर कह दो कि अभी दो केस हैं, इन्हें निपटाकर फिर आपको यहीं बुलाते हैं—कहकर डाक्टर साहब सामने बैठे हुए रोगियों के नुसखे लिखने में लग गये। कर्मचारी बाहर चला गया।

जब दोनों रोगी चले गये, तो तीन-चार भद्र पुरुष कमरे में दाखिल हुए। यों तो डाक्टर साहब कभी उठकर किसी रोगी का स्वागत नहीं करते थे, पर इस क्षेत्र में उन्होंने उठकर आगन्तुकों का स्वागत किया। ये आगन्तुक उनके अपरिचित थे। मामूली शिष्टाचार के बाद डाक्टर साहब ने पूछा—कहिये कैसे आना हुआ ?

आगन्तुकों में से जो व्यक्ति सबसे बूढ़ा था, बोला—आपने विमला का इलाज किया था ?

डाक्टर साहब समझ गये कि किसी रोगिणी का जिक्र है जिसका उन्होंने इलाज किया था। वे सावधान हो गये, और सच तो यह है कि कुछ झुंझला गये। बोले—मैं समझा नहीं। मुझे किसी का नाम याद नहीं रहता। नुसखा लिखते समय फौरन पूछकर लिख देता हूं। हां चेहरा कभी नहीं भूलता हूं।

उस वृद्ध सज्जन ने कहा—मेरा नाम रायबहादुर अक्षयनारायण है। मुझे तो आप नहीं जानते होंगे क्योंकि मैं बाहर का हूं, पर आप मेरे दामाद रामप्रतापसिंह को जानते होंगे ?

डाक्टर साहब ने कहा—मैं अब भी नहीं याद कर पा रहा हूं। मैंने बताया कि मेरी स्मृति शक्ति बड़ी कमज़ोर है।

रायबहादुर अक्षयनारायण ने अपने साथियों के साथ दृष्टि-विनिमय किया, बोले—तो क्या आपने बिमला का इलाज नहीं किया ?—वृद्ध के चेहरे पर की झुर्रियां एकाएक अधिक गहरी हो गईं।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने कुछ अधिक झुंझलाहट के साथ कहा—माफ कीजिये, मैं कई दफा बहुत स्पष्ट रूप से कह चुका कि मुझे कुछ स्मरण नहीं रहता है। सवेरे से शाम तक सौ-दो सौ रोगी तथा रोगिणी देखता हूं, मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि याद रखूं। फिर आप यह भी तो नहीं बता रहे कि केस क्या था, और किस मुहल्ले का था। डाक्टर लोग केस से मरीज को कुछ हद तक याद कर सकते हैं।

वृद्ध सज्जन बोले—मेरे दामाद प्रतापनारायण की हवेली ऐन चौक में है। यहां से पांच मील होगा......

बीच में ही बात काटकर पहले से अधिक गम्भीर होते हुए डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने कहा—वह बिमला वही तो नहीं है जिसकी उम्र बीस-बाइस के लगभग थी, और एकाएक हृदय की धड़कन की बीमारी से मर गई।

—हां हां वही है।

—माफ कीजियेगा मैं अब समझ पाया। पर वह तो कई महीने पहले की बात है।

—जी हां, हम लोगों को अब समय मिला—वृद्ध सज्जन ने कही तो यह बात, पर असली बात यों थी कि अब उन्हें इतने दिनों बाद एक खबर से सन्देह उत्पन्न हुआ था, तभी वे जांच करने आये थे।

—जी हां, यह बहुत ही दुःखपूर्ण मामला रहा, और मुझे इस पर अफसोस रहा कि इस सम्बन्ध में कुछ कर न सका। —कहते-कहते डाक्टर साहब के मन की आंखों के सामने उस रात का वह सारा दृश्य आ गया, और यह सोचकर कि पिता के सामने कन्या की मृत्यु के सम्बन्ध में झूठ बोलकर वह एक नरपिशाच को बचा रहे हैं उनके मन

में एक क्षण के लिये दारुण ग्लानि की अनुभूति हुई। पर अगले ही क्षण उन्होंने यह सोचकर अपने मन का समाधान कर लिया कि लड़की तो मर ही चुकी है, पिता को सारी बातें मालूम भी हो जायं तो वह लौटकर नहीं आती, केवल मानसिक कष्ट और परेशानी होगी। अवश्य उन्हें अपने दिये हुए डेथ सार्टिफिकेट की भी याद आई। बोले—मुझे इस मृत्यु का बड़ा ही अफसोस रहा। लड़की बड़ी ही अच्छी मालूम होती थी।

—जी हां मेरी चार सन्तानों में एक वही लड़की थी, इस कारण उसे हमने बड़े लाड़-प्यार से पाला था। उसके शरीर में कभी कोई रोग भी नहीं था। पता नहीं यह धड़कन की बीमारी कैसे पैदा हो गई, और इतनी जल्दी कैसे बढ़ गई।

—जी हां, हम लोग भी इन बातों को समझ नहीं पाते—कहकर फिर कुछ सोचकर बोले—सब ईश्वर की माया है...

वृद्ध सज्जन ने अपने साथ आये हुए लोगों के चेहरों की तरफ देखा, बोले—जी हां और क्या कहा जाय, सब उन्हीं की इच्छा है, नहीं तो वह चली गई, और मैं रह गया—कहकर उन्होंने रूमाल से अपनी आँखों को पोंछा। फिर जैसे एकाएक कोई बात याद आई, वे उठ खड़े हुए। उनके अन्य साथी और साथ-साथ डाक्टर भी उठ खड़े हुए।

वृद्ध सज्जन ने डाक्टर साहब से विदाई लेते हुए कहा—माफ कीजियेगा, आपका बहुमूल्य समय नष्ट किया...

—नहीं नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, मेरा तो यही काम है।

कहने को तो डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप यंत्रचालितवत् कह गये, पर उनके कानों को ये शब्द खटके। भीतर से जैसे किसी ने कहकहा लगाया—तेरा यह काम है नराधम? जघन्य अपराध को छिपाना तथा बाप से बेटी की मृत्यु के बारे में झूठ बोलना?

वृद्ध सज्जन दरवाजे की तरफ बढ़े। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे अपनी कन्या से उनका जो अन्तिम मिलन सूत्र था, वह समाप्त

हो रहा था। वे बिलकुल अप्रत्याशित रूप से पीछे लौटते हुए बोले—डाक्टर साहब एक बात तो बताइये, उसने मरते समय अपने बूढ़े बाप को याद किया था ? —कहकर वे जैसे थककर अपनी पहलेवाली कुर्सी पर बैठ गये।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप खड़े ही रहे। दूसरे लोग भी खड़े रहे। डाक्टर बड़ी विपत्ति में पड़े। वे तो उस युवती की मृत्यु के समय मौजूद नहीं थे। शायद कई घंटे की ठंडी लाश उन्हें दिखाई गई थी। पर वे ऐसा कह नहीं सकते थे। बोले हुए झूठ की लीक को कायम रखना तो था ही। सत्य तो वे बोल नहीं सकते थे। उन्होंने वृद्ध सज्जन का रुआंसा चेहरा देखा, मानो अनुप्रेरणा मिली, बोले—वह तो आपको बहुत याद कर रही थी...

—क्या कह रही थी ?

—कह रही थी कि आपको तार देकर बुलाया जाय।

—पर मुझे तो कोई तार नहीं दिया गया था।—कहकर उन्होंने अद्भुत दृष्टि से अपने साथ आये हुए साथियों को देखा।

डाक्टर समझ गये कि उन्होंने खतरनाक पानी में नाव बढ़ाई है, संभलते बल्कि संभालते हुए बोले—पर इसका तो मौका ही नहीं लगा, कहते-ही-कहते वह मर गई।

वृद्ध को कुछ समाधान हो गया, पर वे बिल्कुल क्रन्दनोद्यत हो गये, आंख पोंछते हुए बोले—मैं ऐसा जानता तो उसकी शादी ही नहीं करता। अभी दो ही साल हुए, शादी कराई थी। बताइये...

वृद्ध सज्जन एक मिनट तक चुपचाप बैठे रहे, फिर उठकर चले गये। जब तक वे दिखाई पड़े, डाक्टर साहब उन्हें देखते रहे। फिर वे भीतर चले गये। इस समय कोई रोगी नहीं था।

सत्यभामा मानो उनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। ज्यों ही डाक्टर साहब मुंह-हाथ धोकर कपड़े बदलकर लंच के लिये भोजन के कमरे

में आये, बोली—तुम तो आजकल घर से बिलकुल बेखबर रहते हो। मैं अकेली कहां तक संभालूं ?

—क्यों, क्या बात हो गई ?—उन्होंने पैर पर नैपकिन रखते हुए कहा। उन्हें किसी अप्रिय बात की गन्ध आई, बोले—विकास ने कुछ रुपये मंगाये हैं क्या ?

—नहीं, नहीं, जब देखो तब विकास ही पर टूटते हो। जब तक यहां था, तब तक तो लाड़-प्यार का कोई अन्त नही था।

—लाड़-प्यार तो अब भी है—कहकर वे खाने में दत्तचित्त हो गये।

—है क्यों नहीं, पर रुपये से अधिक है।

—यह बात तो ठीक है—डाक्टर साहब ने जैसे अपने से कहा, फिर एक क्षण में संभलकर बोले—असली बात कहो।

—महेन्द्र नाराज़ होकर चला गया, और तुमने कुछ भी नहीं कहा।

डाक्टर साहब चौंककर बोले—मुझे तो नहीं मालूम। मैं तो यही समझता था कि कोई तार पाकर गया।

—बस तुमने सुन लिया, और तुम विश्वास करते हो।

—तुम्हीं ने तो बताया...

—हां हां पर असली बात तो और थी।

—यह मैं कैसे जानूं ?—खाना जारी रखते हुए डाक्टर साहब ने कहा—असली बात क्या है ? तुम से झगड़ा हो गया ?

—मुझसे क्यों झगड़ा होता ? मुझसे कभी किसी से झगड़ा हुआ जो तुम ऐसा कह रहे हो। हां तुम्हारी लाड़ली से उसका झगड़ा हो गया।

—अच्छा, झगड़ा हो गया, मुझे तो कुछ भी पता नहीं चला—आश्चर्य के साथ डाक्टर साहब बोले।

—तुम्हें क्या पता चले। तुमने ही तो उसको सिर पर चढ़ा दिया। अब की बार जब से बाहर घूम आई है, तब से जैसे शेर हो गई है। किसी की बात नहीं सुनती।

—सो तो ठीक है, पर यह तो बताओ कि झगड़ा कैसे हुआ ?

—झगड़ा यह हुआ कि मुझसे बोली कि महेन्द्र से शादी नहीं करेगी। पता नहीं महेन्द्र ने सुन लिया या क्या हुआ, वह उसी दिन चला गया।

डाक्टर साहब के दिमाग में अभी उस सज्जन की बात ताज़ी थी जो अपनी पुत्री के अन्तिम क्षणों के विषय में जानने के लिये आये थे। उन्होंने अपनी जान में अच्छा पात्र समझकर ही उस व्यक्ति को अपना दामाद बनाया होगा, और हुआ क्या। बोले—तो मैं क्या करूं। लड़की समझदार है, खुद सोच-समझकर शादी करेगी। मैं इसमें क्या कर सकता हूं ?

—तुम भी कहते थे महेन्द्र अच्छा पात्र है।

—हां तो मैं तो अब भी कह रहा हूं, पर शादी तो मैं नहीं कर रहा हूं। शादी तो उसकी है।

—पिता-माता और क्या करते हैं ? नेक सलाह देते हैं। उससे अच्छा पात्र कहां रोज-रोज मिलता है ?

डाक्टर साहब को फिर उस घटना की बात याद आई। युवती मरी हुई पड़ी थी...। वे आगे सोच नहीं सके। खाने से हाथ हटाकर नैपकिन से मुंह पोंछते हुए बोले—पात्र बहुत मिलेंगे। और अभी बीणा की उम्र ही क्या है ?—कहकर रहस्यमय तरीके से और बोले—जो जिसके भाग्य में होता है, वह होता है। मैं क्या समझाऊं, मैं कोई ईश्वर थोड़े ही हूं।

सत्यभामा समझ गई कि इस समय कुछ नहीं चलेगा।

: १६ :

जब कृष्णकुमार लाला दीनानाथ की कार पर सवार होकर चला गया, तो तांगेवाले गफ़ूर को याद आया कि सीट के नीचे कोई चीज़ रखी है। उसे बुरा तो मालूम हुआ कि लगी-लगाई सवारी इस प्रकार उतर गई। अरे बाबा तांगे पर चलना हो चलो, नहीं तो यह क्या बदतमीजी है बीच में उतरकर चल देना। पहले के ज़माने में लोग ऐसे मौकों पर कुछ पैसे देकर तब जाते थे, पर अब तो ज़माना ही बदला हुआ है। खैर अच्छा ही हुआ। उसकी गठरी तो हाथ लगी। एक बार गफ़ूर ने सोचा—है यह बेईमानी। फिर वह सवारी अभी तो कार पर चढ़ने के जोश में झट कार पर सवार हो गयी, पर उसे बात याद तो आयेगी ही। तब वह कार लेकर पीछा करेगा।

यह सोचते ही गफ़ूर की धर्मबुद्धि कुछ प्रखर हो गई, पर कौतूहल ने जोर मारा कि देख तो ले उस गठरी में क्या है, फिर चाहे उसे लौटा ही दे। एक मिनट अनिश्चय में रहने के बाद उसने घोड़े को चाबुक लगाया, और सीधी सड़क छोड़कर इधर-उधर गलियों में होता हुआ चला। समस्या तो यह थी कि कहीं जाकर गठरी को खोलकर देखे कि उसमें क्या है। क्या पता वह आदमी क्या लिये जा रहा था, कहीं चांदी की ईंटें ही न हों। लगता तो उसी प्रकार भारी ही था। यह सोचकर उसे रोमांच हो आया। पर गलियों में होते हुए घूमने पर भी उसे यह समझ में नहीं आया कि कहां उतरे जिससे उस गठरी की परीक्षा करने का मौका लगे। नहीं अपने घर में जाना असम्भव था। उसके साथ उसके साले रहते थे, और उन पर विश्वास करना असम्भव था। वे यह कब माननेवाले थे कि सवारी माल छोड़कर चली गई।

गफ़ूर यहीं तक सोच पाया था कि उसके मन में एकाएक एक आशंका उत्पन्न हुई। उसके पैरों के नीचे से धरती निकल-सी गई। कहीं उस सवारी ने जान-बूझकर गठरी छोड़ दी हो तो? अभी उसी दिन की बात है रेल में किसी ने एक बक्स छोड़ दिया था, उसे खोला

गया तो उसमें एक कटी हुई लाश निकली। अरे बाप रे, कहीं इस में भी वैसी ही कोई चीज़ हुई तो? पर यह गठरी छोटी है, इसमें किसी वयस्क व्यक्ति की लाश तो हो नहीं सकती, पर कहीं किसी बच्चे की लाश हुई तो? ऐसा तो बहुत होता है। वह आदमी जिस तरह विना बातचीत के गप से जाकर कार में बैठ गया, इससे तो उस पर शक ही होता है। उसने एक बार पीछे की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। हो सकता है कि यह सारी बात पहले से ही तय हो। नहीं तो कार उधर से आई, और वह आदमी उसमें बैठ गया, और कार हवा हो गई, यह कैसे हुआ? हां वह आदमी कार पर बैठने से इनकार कर रहा था, पर कौन जाने यह सारी बात मिली भगत हो।

गफ़ूर को कुछ भय मालूम हुआ। उसने चारों तरफ देखकर तांगा घुमाया, और शहर के बाहर की ओर चला। सन्ध्या हो रही थी। एक निर्जन स्थान को देखकर उसने तांगा रोका। ऐसे निर्जन स्थान में तांगा क्यों रुका, इस पर कोई शायद शक करे (क्या पता कोई हो ही) यह समझकर उसने तांगे से उतरकर पहिये की परीक्षा शुरू की। जब पहिया देखने के बहाने उसने चारों तरफ़ देख लिया कि वाकई कोई कहीं नहीं है, तो उसने थिरकते हुए हाथों से उस गठरी को सीट के नीचे से निकाला। वह डर भी रहा था, पर कौतूहल प्रबल था। उसने थोड़ी ही देर में गठरी को ज्यों-त्यों करके खोल डाला, तो देखा उसमें एक कालीन था। उसका डर तो जाता रहा, पर यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि वह इसका करेगा क्या? इतना सोचने का समय नहीं था। उधर से कोई बैलगाड़ी आ रही थी। फिर से गठरी बांधना तो सम्भव नहीं था। इसलिए कालीन को जैसे-तैसे सीट के नीचे छिपाकर उसने मुंह में एक सिगरेट दबाई, दियासलाई जलाकर उसने पहले सिगरेट सुलगाई, और फिर उसी सलाई से तांगे की लालटेन जलाई। इसके बाद उसने पीछे जाकर देखा कालीन के गिर जाने का कोई डर तो नहीं है। उसे

जब विश्वास हो गया कि कोई डर नहीं है, तब वह जाकर तांगे को घुमाकर उसमें बैठ गया। घोड़ा चलने लगा।

जल्दी ही वह शहर में पहुंच गया। सिगरेट समाप्त हो गई थी, पर वह किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाया। यदि जाकर वह कालीन को उस बंगले में पहुंचा देता है जहां से वह व्यक्ति इस गठरी को लेकर निकला था, तो सम्भव है कि उसे कुछ इनाम मिले। पर यह इनाम किसी भी हालत में एक रुपये से अधिक न होगा, जो उसकी सेवा और कालीन के दाम को देखते हुए कुछ भी नहीं है। कालीन का दाम डेढ़ सौ से क्या कम होगा? इतनी देर तक तांगा लेकर इधर से उधर फिरते रहे, और कितना परेशान हुए, इस एक रुपये से क्या होता है? नहीं, इस कालीन को लौटाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पर इसका होगा क्या? इसे बेचना कठिन है। सैकड़ों प्रश्न पूछे जायेंगे, एक तांगेवाले के पास इतना बढ़िया कालीन कहां से आया। और कहीं इस बीच में उस व्यक्ति ने थाने में लिखा दिया हो कि इस प्रकार से एक तांगे में उसका कालीन रह गया, तो लेने-के-देने पड़ जायं। नहीं, बेचने की चेष्टा ठीक न होगी।

फिर क्या हो? यह अच्छी विपत्ति में फंसा। न तो निगलते ही बनता है, न उगलते ही बनता है। तो क्या जाकर एक रुपया इनाम पर ही सन्तोष किया जाय? उसने घोड़े की बाग उस बंगले की तरफ घुमा दी, जिसमें से कृष्णकुमार निकला था।

थोड़ी ही देर में वह बंगले के सामने आ गया। कम्पाउंड के अन्दर एक कार खड़ी थी, शायद वही कार हो। वह तांगे को बंगले के अन्दर ले जानेवाला ही था कि उसे स्मरण हो आया कि उसने गठरी खोली है, और वह सीट के नीचे खुली-खुलाई पड़ी है। यदि कोई पूछे कि उसने गठरी क्यों खोली, तो वह इसका कोई उत्तर नहीं दे सकता। फिर चीज़ पहुंचाने में इतनी देर क्यों की? ये विचार उसके मन में आते ही उसने बाग खींच ली, और तांगे का मुंह मोड़ दिया। वह सीधा

घर की तरफ चला। यह तो हो नहीं सकता कि इतनी बहुमूल्य वस्तु को रास्ते में फेंक दिया जाय। फेंक देने पर कोई-न-कोई लेगा ही, फिर वही क्यों न ले। घर में सालों से निपट लिया जायगा। वह उनका मुहताज थोड़े ही है जो उनसे डरेगा।

थोड़ी ही देर में वह घर पहुंच गया। वह सुखी था कि अन्त तक वह घर पर ही आया। पर उसे अफसोस हो रहा था कि इतनी देर फिजूल में घूमता क्यों रहा। सीधे घर आता तो घोड़े की थकान बचती और अपनी भी।

इतना जल्दी घर लौटते देखकर गफूर की स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। गफूर ने स्वयं ही बताया—आज नीलाम में गये थे, जहां से एक कालीन ले आये।

—कालीन? कालीन क्या?—गफूर की स्त्री बोली।

गफूर की आँखें चमक उठीं। बोला—तुम क्या जानो, कालीन बड़े लोगों के यहां होता है।—कहकर उसने टटोलकर सीट के नीचे से कालीन निकाला।

इस बीच में उसकी बीवी तांगे से बत्ती खोलकर ले आई थी। उस बत्ती में गफूर ने फिर से कालीन को देखा। खैरियत यह थी कि साले इस समय घर पर नहीं थे। गफूर ने कालीन को उठा लिया, और उसे लेकर बातें करते हुए दोनों भीतर चले गये।

: १७ :

सत्यभामा पति से निराश हो गई। वह समझ गई कि डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप वीणा पर शादी के बारे में कोई जोर नहीं डालेंगे। इससे

वह मन-ही-मन बहुत रुष्ट हुई, पर वह छटपटाकर रह गई क्योंकि न पति पर वश चलता था, न पुत्री पर। फिर करती ही क्या? पति को वह बहुत चाहती थी, पर साथ ही उन्हें पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप से उल्लू भी समझती थी जैसा कि बड़े-से-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति की पति-प्राणा स्त्री भी समझती है, पर इस वीणा को क्या हो गया? वह अपनी भलाई-बुराई क्यों नहीं समझती? अब वह कोई बच्ची नहीं है। उसे समझना चाहिए कि महेन्द्र जैसे वर मारे-मारे नहीं फिरते।

सत्यभामा ने अपने कर्तव्य में कोई कसर नहीं रखी। वह बराबर महेन्द्र से पत्र-व्यवहार करती रही। महेन्द्र उत्तर तो दे देता था, पर उसके उत्तर केवल भद्रतापूर्ण होते थे। इधर से आत्मीयता का प्रदर्शन होने पर भी उधर से केवल भद्रता थी। सत्यभामा अपने पत्रों में वीणा के सम्बन्ध में कई बातें लिखती थी जैसे उसे पेन्टिंग में पुरस्कार मिला, उस चित्र की प्रशंसा गवर्नर की पत्नी ने की, इत्यादि, पर उधर से कभी वीणा का उल्लेख भी नहीं होता था। महेन्द्र विकास के विषय तो बराबर पूछता था, पर वीणा के बारे में उसके पत्रों में कभी एक शब्द भी नहीं रहता था। क्या यह केवल युवक-सुलभ लज्जा थी, या उदासीनता अथवा क्रोध? सत्यभामा इस सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुंच नहीं पाती थी।

वह अकेली इस संग्राम को कब तक चलाती। एक दिन उसने सोचा यह अच्छी रही मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त। जिसकी शादी है, उसे कोई फिक्र नहीं; खैर वह तो नासमझ है, उसके बाप को भी कोई फिक्र नहीं, और ख्वामख्वाह वह महेन्द्र को पत्र लिखा करती है। छिः छिः छिः छिः पता नहीं वह क्या समझता होगा। यह विचार आते ही वह उठ खड़ी हुई, और डाक्टर साहब से मिलने पहुंची, पर वे तो हमेशा की तरह कार्यव्यस्त थे। इस कारण वह वीणा के पास गई।

गई तो वह बड़े जोश में, पर वीणा को देखकर एकाएक वह भूल गई कि कैसे शुरू करे। वीणा कुछ पढ़ रही थी। उसने कदाचित्

मां को देखा पर कुछ बोली नहीं। तब सत्यभामा ने ही कहा—महेन्द्र का पत्र आया है ....

—हूं—वीणा शायद बातों का रुख समझ गई, उसका चेहरा कुछ तन गया।

सत्यभामा ने एकाएक लहजा बदलते हुए कहा—वीणा, देखो तुम अब बच्ची नहीं हो। उपन्यास आदि पढ़ती हो। मैं कहती हूं महेन्द्र जैसा वर हाथ से निकल जाने पर फिर नहीं मिलेगा।

—यह तो मम्मी तुम कई बार कह चुकी हो—वीणा ने तिखाई से कहा।

—मैं फिर कहती हूं। अन्तिम बार कह रही हूं।—कहकर उसने सांस ली, फिर बोली—वह अब हाथ से निकल रहा है। अब आगे मैं कुछ नहीं कर सकती।

वीणा के चेहरे पर हंसी की एक पतली रेखा दौड़ गई। वह अपनी मां से बहुत प्यार करती थी, पर उसे गम्भीर देखना पसन्द नहीं करती थी। बोली—क्यों क्यों, कहीं शादी तय हो रही है क्या?

सत्यभामा झल्ला गई, बोली—नहीं, वह तो कहता है कि वह शादी ही नहीं करेगा। अभी कुछ-कुछ ऊपरी मन से कह रहा है, पर कहीं अड़ गया, उसे तो ब्रह्मा भी उसकी प्रतिज्ञा से हटा नहीं सकते।...

वीणा ने इस बात को कई बार सुना था। कुछ गम्भीर होकर बोली—क्यों?

—क्यों? क्या इतनी दुधमुंही हो? इतनी सी बात नहीं समझती हो? जब वह यहां आया था तो विवाह के विरुद्ध नहीं था, जब गया तो विवाह के विरुद्ध हो चुका था।

वीणा ने माता की आंख-से-आंख हटा ली। फिर जमीन की तरफ देखती हुई बोली—पर मम्मी, मैं तो कह चुकी हूं कि मैं उनसे शादी नहीं कर सकती।

सत्यभामा समझ गई कि रुखाई से काम नहीं बनेगा। इस कारण

करीब-करीब पुचकारती हुई बोली—पर बेटी, मैं भी तो सुनूं कि क्या बात है।

वीणा कुछ नहीं बोली। सत्यभामा अब बिलकुल बेटी के पास आ गई। बोली—सच बता तू किसी से प्रेम करती है? यह इसलिए पूछ रही हूं कि नहीं तो कुछ समझ में नहीं आता कि महेन्द्र जैसे वर को कोई इनकार कैसे कर सकती है।

वीणा एकाएक कुरसी हटाकर कुछ दूर खिसक गई, फिर कुछ क्रुद्ध लहजे में बोली—यदि मैं कहूं, कि मैं करती हूं तो? यह कोई गुनाह है?

सत्यभामा नाराज हो गई, बोली—यदि क्या, तू जरूर करती होगी।

वीणा बोली—मैं कहती हूं मैं करती हूं, और मैं यह बात बता दूं कि महेन्द्र उसके पांव की धुवन के बराबर नहीं है।

सत्यभामा समझ नहीं पाई कि वीणा जो कुछ कह रही है, वह केवल क्रोध में कह रही है या उसमें कुछ सत्य भी है। बोली—तेरी आंखों में ही ऐसा होगा, नहीं तो कौन राजा-महाराजा तेरे इर्द-गिर्द आ गया कि वह महेन्द्र से बढ़कर हो गया।

—मैं जानती हूं राजे-महाराजे ही तुम्हारे स्टैंडर्ड से सबसे अच्छे वर हैं।—वीणा ने फुफकारते हुए कहा।

सत्यभामा बोली—जैसे तुम्हारा स्टैंडर्ड कुछ और है। मैंने इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें मारते कई लड़कियों को देखा है, पर जब वे शादी करती हैं तो सबसे पहले रुपये देखती हैं। जो नहीं देखतीं, वे पछताती हैं। तुम्हारी चचेरी बहन सुमित्रा को ही देखो, उसने जोश में आकर एक गरीब प्रोफेसर से शादी कर ली, पर छः महीने भी बीत नहीं पाये उससे अलग हो गई, और तब से अलग ही रहती है। तुम से तो कोई बात छिपी नहीं है।

वीणा आश्चर्य के साथ बोली—सुमित्रा के पति ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया, इसलिए वह अलग हो गई।

—जी हां, दुर्व्यवहार यह था कि उस बेचारे प्रोफेसर ने यह कहा कि आय के अनुसार व्यय होना चाहिए। पर सुमित्रा की तो आदत बिगड़ी हुई थी। उसने खर्च में कोई कमी नहीं की, और प्रतिदिन चखचख होती रही। अन्त में एक दिन सुमित्रा इतनी बिगड़ खड़ी हुई कि वह टैक्सी में सामान रखकर तुम्हारे चाचा के यहां चली आई।

वीणा बोली—तुम्हीं ने तो कहा था कि प्रोफेसर किसी एंग्लो इंडियन नर्स से फंसा था, इस कारण यह सब झगड़ा हुआ।

—कहने को तो हम सब लोगों ने यही कहा, आखिर लड़की को डिफेन्ड करना ही था, पर असली बात जो थी, वह यही थी। वह बेचारा प्रोफेसर जिसकी कुल आमदनी ३०० रुपल्ली है, वह भला एंग्लो इंडियन नर्स से क्या फंसता? उसके लिए तो बहुत रुपये चाहिये।

यद्यपि वीणा इस समय झगड़ा करने पर कमर कस चुकी थी, और सच तो यह है कि झगड़ा कर रही थी, फिर भी सुमित्रा के जीवन पर यह जो नई रोशनी पड़ी, उससे वह भौंचक्की रह गई। वह सुमित्रा को स्त्रियों के अधिकार के लिए लड़नेवाली एक आदर्श महिला समझती थी, और इसी रूप में उसका आदर करती थी। पर इस समय माता ने जो कुछ कहा, उससे तो सुमित्रा एक बहुत ही मामूली स्त्री के रूप में सामने आती थी, बल्कि मामूली से भी कुछ कम। एक भद्र पुरुष से प्रेम करके सब-कुछ जान-बूझकर शादी करना, फिर फिजूलखर्ची के कारण उससे चखचख करना, और अन्त में उसे छोड़ देना, यह कोई अच्छी बात तो है नहीं। केवल यही नहीं, अपने भूतपूर्व प्रेमी और पति पर मिथ्या लांछन लगाना, जब कि लांछन अपने ऊपर लगना चाहिये, कितनी बुरी बात है?

वीणा इन सारी बातों को सहसा हजम न कर सकी। बोली—सुमित्रा तो खुद उस नर्स की बात कहती है।

—कहेगी क्यों नहीं? उसे जैसा सिखलाया गया, वैसा कहती रहती है

जब वह लड़-झगड़कर चली आई, तो तेरी चाची और मैं उससे झगड़े का कारण पूछने लगी। बातचीत करने पर मालूम हुआ कि सारा झगड़ा सुमित्रा की फिजूलखर्ची के कारण हुआ। उस बेचारे की आमदनी ३०० रुपये थी, और वह १५०० रुपये खर्च करना चाहती थी। भला ऐसा तो कब तक निभता? हम लोग समझ गईं कि दोष सुमित्रा का है। उसे बहुत समझाया कि वह लौट जाय, पर वह राजी नहीं हुई। रो-रोकर बस यही कहती जाती थी, वह बड़ा कमीना है, मैं उसके साथ एक मिनट भी नहीं रह सकती। जब हम लोगों ने ४--६ रोज समझा कर देखा कि सुमित्रा नहीं मानेगी, तब तेरी चाची ने और मैंने मिलकर ऐंग्लो इंडियन नर्स वाली बात कही। आखिर सोसायटी में मुंह दिखाना था। कुछ माकूल बात तो कहनी ही थी। यह तो कह नहीं सकती थी कि सुमित्रा फिजूलखर्ची करना चाहती है, और उसके पति के पास पैसे नहीं हैं।

—तो इसके माने यह है कि तुम लोग बहुत झूठी हो। सुमित्रा को बचाने के लिए इस प्रकार एक शरीफ आदमी के विरुद्ध बिलकुल झूठी बात उड़ाती फिरती हो।

—क्या करूं? जब लड़कियां बेवकूफी करेंगी, तो उन्हें हम मांएं छोड़ तो सकती नहीं, किसी-न-किसी प्रकार उनकी रक्षा तो करनी ही है।—कहकर एकाएक कुछ नरम पड़ती हुई बोली—इसी कारण समय रहते तुम्हें समझा रही हूं। तुम्हारी या सुमित्रा की उम्र में लड़कियां अपनी असली भलाई समझ नहीं पातीं। जोश में आकर गलत कदम उठा लेती हैं, इसलिए उन्हें समझाना पिता-माता का कर्तव्य है आगे अपना-अपना भाग्य है—कहकर सत्यभामा ने एक लम्बी सांस ली। उसका चेहरा बुझ-सा गया।

यदि सत्यभामा झगड़े के लहजे में बात करती तो वीणा तुर्की-ब-तुर्की जवाब दे सकती थी, पर जब वह कर्तव्य की बात करने लगी, और लम्बी सांस लेने लगी, तो वह बहुत-कुछ निरस्त्र हो गई। बोली—तुम

यह न समझो माँ कि सभी लड़कियाँ सुमित्रा की तरह होती हैं। कुछ ऐसी भी तो हो सकती हैं, जो अपने प्रण पर मर-मिट सकती हैं।

सत्यभामा ने कहा—क्यों नहीं बेटी ? पर जिसको जैसी शिक्षा होती है, वह वैसी ही होती है।

—तो क्या तुम समझती हो कि मैं दुःख-कष्ट सह नहीं सकती ? अच्छा तुम्हीं बताओ कि बाबूजी कल गरीब हो जायं, तो तुम उन्हें छोड़ दोगी ?

सत्यभामा कड़ुवेपन की हंसी हंसती हुई बोली—मैं तो नहीं छोड़ूंगी, यह बात तो सच है। हमारे जमाने में शिक्षा ही और तरह की थी। पर तुम्हारी ही आंखों के सामने सुमित्रा का दृष्टान्त मौजूद है। जिस तरह तुम्हारे बाबूजी हमारे पति हैं, उसी तरह प्रोफेसर साहब भी सुमित्रा के पति हैं। हमने जब शादी की की थी तो प्रेम की कोई बात नहीं थी, पर इनकी शादी प्रेममूलक थी, फिर भी यह दुर्घटना हुई।

इसके बाद भी माता-पुत्री में देर तक बातचीत होती रही। वीणा ने स्वीकार किया कि जिस नवयुवक से उसका प्रेम है, वह धनी नहीं है, और उसके धनी होने की सम्भावना भी कम है। इसके विपरीत सत्यभामा ने महेन्द्र के भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं को गिनाया। माता-पुत्री अपनी-अपनी बात कहती रहीं। वे किसी समाधान पर एक मत नहीं हो सकीं। फिर भी सत्यभामा ने उस रात को महेन्द्र के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उसे इस प्रकार की बातें लिखी गईं कि वह बिल्कुल निराश न हो जाये।

यद्यपि वीणा को यह विश्वास हो गया था कि उसकी मां ने सुमित्रा के विषय में जो नई बातें कहीं, वे सत्य होंगी, फिर भी उसके मन में कुछ अविश्वास इस कारण उत्पन्न हुआ कि शायद मां ने उसे समझाने के लिए यह दृष्टान्त गढ़ लिया हो। इस कारण वह अगले ही दिन सुमित्रा के पास पहुंची। सुमित्रा उससे ५-६ साल बड़ी थी, और जब से वह पतित्यागिनी होकर आई थी, तब से वीणा की आंखों में उसकी इज्जत ५-६ साल बड़ी होने के कारण जितनी इज्जत होनी चाहिए, उससे कहीं अधिक बढ़ गई थी। बात यह है वह वीणा तथा उसकी समवयस्का तरुणियों की आंखों में नये युग की नई स्त्री का प्रतीक बन गई थी। अब उसी प्रतीक को बचाने या तोड़ने की बात थी।

जब वह सुमित्रा के पास पहुंची, तो बड़ी देर तक उसकी यह समझ में नहीं आया कि किस प्रकार असली बात छेड़ी जाय। अन्त में उसने जब देखा कि बहुत समय हो गया, तो निराशा के साहस से बली होकर कह बैठी—अब मेरी शादी होने जा रही है।

सुमित्रा के लिए यह एक खबर थी, बोली—कहां? मैंने तो इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना।

—सुनती कैसे? अभी कोई बात अन्तिम रूप से तय नहीं हुई।—कहकर मानो कुछ सोचकर और पहले से अधिक पास आकर बोली—बात यों है कि माताजी महेन्द्र नामक एक युवक से मेरी शादी करना चाहती हैं, पर मैं राजी नहीं हूं।

सुमित्रा बोली—कौन महेन्द्र? वही जो अभी कुछ दिन पहले तुम्हारे यहां ठहरा था?

—हां, वही। मुझे वह पसन्द नहीं है।

—क्यों, क्यों? मुझे तो वह होनहार जंचा। सुन्दर भी है।

—हां, मां के खयाल से तो वह बहुत योग्य पात्र है, पर शादी के लिए क्या यही योग्यता सबसे बड़ी है? मैंने तो साफ इनकार कर

दिया।—कहने को तो वह जोश में इतना कह गई, पर कहने के बाद उसे स्मरण आया कि वह जिस उद्देश्य से आई है, वह पीछे ही रह गया। तब उसने अपनी बात का रुख बदलते हुए कहा—क्या प्रेम कोई वस्तु नहीं है?

इतने पर भी जब सुमित्रा ने कुछ नहीं कहा तो वीणा ने कहा—मैं तुम्हारे पास सलाह के लिए आई हूं।

अब तक सुमित्रा ऐसे सुन रही थी, मानो वह कोई कहानी सुन रही हो, पर ज्योंही उसने सलाह शब्द सुना, त्योंही उसका चेहरा कड़ा पड़ गया, और जैसे संभल गई। बोली—मैं प्रेम वेम कुछ मानती नहीं हूं। अक्सर प्रेम सामयिक मोह होता है।

वीणा ने अब मौका देखा, साहसपूर्वक बोल पड़ी—पर बहन तुमने तो प्रेम करके शादी की थी।

—हां, पर वह मोह था। शादी में सबसे बड़ी बात जिस पर ध्यान देना चाहिए, वह है स्वभाव। यदि स्वभाव नहीं मिला, या ठीक नहीं हुआ, तो बाकी सब बातें बेकार हैं। आदमी कमीना न हो, बस।

अब की बार वीणा ने पहले से अधिक साहस कर कहा—पर तुमने तो प्रोफेसर साहब को और कारण से छोड़ा था। वह तो किसी...

—हां, वह एक ऐंग्लो इंडियन नर्स से फंसा था।

वीणा ने सुमित्रा को बहुत ध्यान से देखा, इतने ध्यान से मानो वह उसके हृदय के अन्तस्तल तक पढ़ डालना चाहती थी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि सुमित्रा की आंखें उसकी पैनी दृष्टि के सामने एक मुहूर्त्त के लिए झप गईं। वह एकाएक बोली—पर बहन बुरा न मानना, यह बात तो झूठी है।

इतना कहना था कि सुमित्रा आपे से बाहर हो गई, मानो जोंक पर नमक पड़ा हो, बोली—तुझे किसने कहा कि यह बात झूठी है?

वीणा बोली—बाहरवालों के लिए यह बात अच्छी है, पर घर के अन्दर तो ऐसी बात नहीं चल सकती। चाची और मां ने तुम्हें बचाने

के लिए नर्स वाली बात पैदा की। बहन नाराज न हो, मैं सब जानती हूं।

अब सुमित्रा के लिए ढोंग जारी रखना असम्भव था। पर वर्षों से वह इस ढोंग के साये में पलती आई थी, इस कारण उसकी हालत ऐसी हुई जैसे किसी कछुए के ऊपर के खोल को निकालकर उसे छोड़ दिया जाय। वह सिसक-सिसककर रोने लगी। बोली—मुझे बचाने के लिए यह किस्सा बनाया गया, यह तूने खूब कहा। मैं किसी की खुशामद थोड़े ही करने गई थी कि मुझे बचाओ, मेरे लिए कोई कहानी गढ़ लो। चाची और मां ने अपनी इज्जत बचाने के लिए ही यह कहानी गढ़ी। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहती थी कि प्रोफेसर कमीना है, और मैं उसके साथ रह नहीं सकती।

—पर बहन उन लोगों ने यह समझा कि जो कारण तुम दे रही हो, वह यथेष्ट नहीं है। इसी कारण तुम्हें बचाने के लिए उन्होंने कारण बनाये।

सुमित्रा ने जो फिर से अपने सम्बन्ध में बचाना शब्द का प्रयोग सुना, तो वह जल-भुन गई, बोली—वे मुझे खूब बचा रही हैं। तुझे बता दिया, ऐसे ही न मालूम किस-किस को बता दिया, अब मैं बिलकुल मुंह नहीं दिखा सकूंगी—कहकर वह फिर सिसकने लगी।

जब यह परिस्थिति आ गई, तो वीणा को यह बताना पड़ा कि किन परिस्थितियों में उसकी मां ने उसे यह रहस्य बतलाया था। अपनी मां के बचाव के लिए ऐसा करना जरूरी था। पर इस प्रकार परिस्थिति साफ करने पर भी वीणा ने सुमित्रा के साथ कोई रियायत नहीं दिखलाई, बोली—बहन, तुम को हम सब लोग आदर्श आधुनिका समझती थीं, पर तुमने यह कैसे सहन किया कि एक शरीफ आदमी के विरुद्ध इतने गन्दे अभियोग लगाये गये? माना कि दूसरों ने कुछ हद तक अपने फायदे के लिए इस प्रकार की अफवाह उत्पन्न की, पर तुमने उस पर अपनी सील-मोहर लगाकर उसको सत्य का रूप

क्यों दे दिया? यह तो तुम मानती हो न कि चरित्र पर, चाहे वह पुरुष का ही चरित्र हो, झूठा अभियोग लगाना एक घृणित अपराध है? कम-से-कम तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। मां और चाची की बात और है, क्योंकि वे दूसरे ही युग में पैदा हुईं और पलीं, और उनमें मान्यताएं और हैं।

सुमित्रा ने कहा—शुरू-शुरू में मुझे भी ऐसी बात कहते हुए झिझक होती थी, पर वीणा, जिसे तुम आधुनिक समाज कहती हो, उसके भी बन्धन, परम्पराएं, रूढ़ियां इतनी प्रबल हैं कि एक स्त्री उसके विरुद्ध सिर उठावे तो भी कुछ नहीं कर सकती। पहले तो जब मैं प्रोफेसर को छोड़कर आई थी, तो यही समझती थी कि स्वभाव का न मिलना ही यथेष्ट कारण है जिस पर कोई स्त्री अपने पति से अलग हो सकती है। पहले मैंने मां और चाची की उस झूठी बात को केवल उन्हें खुश करने के लिए ही ग्रहण किया। पर थोड़े दिनों में मैं समझ गई कि इस समाज में कुछ बने-बनाये नमूने हैं, जिनके अनुसार हमें चलना ही पड़ेगा। पति को छोड़ने के भी कुछ सांचे हैं, माननीय सांचे, जिनमें हमें अपने को ढालना पड़ेगा। उस दृष्टि से देखने पर यह झूठी अफवाह भी जरूरी थी।

अब वीणा को सुमित्रा पर दया आ रही थी। पर साथ-ही-साथ वह आज पूरे तरीके पर शव-परीक्षा करने पर तुली हुई थी। बोली—क्या तुमने ही मां और चाची को इस बात के लिए मजबूर किया कि वे तुम्हारे कार्य के लिए कोई उचित कारण तैयार करें? तुम आय से अधिक व्यय करना चाहती थीं, इसी पर तुम्हारी और उनकी नहीं बनी। तुम उन्हें छोड़कर चली आयीं, और फिर समझाने-बुझाने पर भी वापस जाने को तैयार नहीं हुईं। ऐसी हालत में वे बेचारी क्या करतीं? इसी कारण उन्हें नर्सवाली बात बतानी पड़ी।

इसके बाद बड़ी देर तक दोनों बहनों में विवाह टूट जाने के कारणों पर बातचीत होती रही। वीणा ने कहा—प्रोफेसर की आमदनी तुमसे

छिपी हुई नहीं थी, और तुमने जान-बूझकर उनसे शादी की, फिर उन्हें खर्च के मामले में कमीना कैसे कहा जा सकता है ? जैसे कि माँ कहती हैं कोई भी पुरुष किसी से कितना भी प्रेम करे, वह यह नहीं चाहेगा कि उसकी खामख्यालियों के कारण उसे दीवानी जेल में जाना पड़े।

उस दिन वीणा वहाँ से खाना खाकर लौटी। वह कुछ इस प्रकार की धारणा लेकर लौटी कि यदि सुमित्रा को अपने-आप पर छोड़ दिया जाता, तो वह शायद अब तक अपने पति के पास लौट जाती, क्योंकि इस बीच में धक्के खाते-खाते उसे गणित की यह सरलतम बात समझ में आ गई थी (स्त्रियों को यह बात कभी समझ में नहीं आती) कि आय से व्यय अधिक नहीं हो सकता। पर उसे बचाने के लिए जिस नर्स की सृष्टि की गई थी, वह एक खाई के रूप में उन दोनों के बीच खड़ी थी। मामूली झगड़ों के कारण पति से अलग होकर मायके आने पर फिर पति के पास वापस जाया जा सकता है, पर जब दोनों के बीच में एक नर्स का इतिहास हो, तो उसके पास वापस जाने में हेठी थी। वह अब वापस जाना चाहती, तो शायद उसकी माँ और चाची ही उसे रोकतीं। वीणा यह सोचती हुई घर वापस आयी कि यह अजीब समाज है कि इसमें रक्षक ही भक्षक का रूप भी धारण किये हुए हैं।

ये सारी बातें तो हुईं, पर वीणा जिस निजी समस्या को सुलझाने के असली लक्ष्य से सुमित्रा के पास गई थी, उसमें तो कोई लाभ नहीं हुआ। माँ ने जो बात कही थी, वही बात सत्य प्रमाणित हुई। ऐसा होने पर समाधान में कोई आसानी नहीं हुई। बल्कि और उलझनें बढ़ीं हीं। तो क्या वह सुरेन्द्र को छोड़कर महेन्द्र को ग्रहण करे ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कभी नहीं। वह सुमित्रा की तरह नहीं है कि फजूलखर्ची के लिए प्रेम करके ब्याहे हुए पति को छोड़ दे। नहीं, नहीं, नहीं। कभी नहीं। पर जितने ही जोर से उसने अपने मन में नहीं कहा, उतना ही उसके मन के किसी कोने में अपने सम्बन्ध में एक सन्देह सिर उठाने लगा। आखिर सुमित्रा में और उसमें क्या फर्क है ? सुमित्रा को तो

सब लोग अच्छी ही कहते थे, और अब भी अच्छी कहते हैं।

वह चिन्तित हो गई।

: १६ :

डाक्टर लछमणस्वरूप ने विश्वम्भरनाथ से सौदा भी कर लिया था, और रुपये भी ले लिये थे, पर जिस कार्य के लिए सौदा हुआ था तथा रुपये लिये गए थे, उस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहीं किया था। लाला दीनानाथ बराबर उनके पास आते थे, और दवाइयां भी ले जाते थे। यदि डाक्टर साहब चाहते, तो लाला जी को जैसी चाहते वैसी दवा दे देते, और किसी को कानोंकान खबर नहीं होती। यहां तक कि लाला दीनानाथ को भी इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता। लाला जी को डाक्टर साहब पर पूरा विश्वास जो था।

डाक्टर लछमणस्वरूप ने जान-बूझकर ही अब तक इस सम्बन्ध में कोई कारवाई नहीं की थी। शायद वे इस प्रकार अपने विवेक को समझाना चाहते थे कि लेने को मैंने रुपये तो ले लिये, पर कोई अनुचित कार्य नहीं किया। विवेक को तो उन्होंने इस प्रकार कुछ हद तक समझा लिया, पर दूसरी तरफ उन्हें यह डर भी बना हुआ था कि कहीं लाला दीनानाथ की नई स्त्री को गर्भ रह गया, तो वह विश्वम्भरनाथ को क्या मुंह दिखायेंगे। अवश्य मन-ही-मन उन्होंने जवाब तैयार रखा था—भाई क्या करूं, दवा तो मैं बराबर देता रहा, पर उन्होंने खाई ही न हो तो इस पर मेरा क्या वश है।

जवाब तो बहुत ही उचित था। सच तो है, डाक्टर दवा दे सकता है, पर रोगी उसे खाता है या नहीं खाता है, इसके लिए डाक्टर

कैसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है ? इस प्रकार डाक्टर लछमणस्वरूप ने मन-ही-मन दूर तक की तैयारी कर ली थी, और वे करीब-करीब निश्चिन्त होकर बैठे हुए थे कि जैसी भी परिस्थिति होगी, उसका सामना कर लिया जायगा।

उन्होंने तो इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया, पर कृष्णकुमार और रूपा को इस सम्बन्ध में बड़ी फिक्र थी। अवश्य उनकी फिक्र दूसरे प्रकार की थी। विश्वम्भर नाथ जब से आया था, तब से डाक्टर साहब इस मत के हो गये थे कि लाला दीनानाथ ने बुढ़ापे में शादी कर ली, तो कोई बात नहीं, वे अपनी नई स्त्री के लिए एकाध छोटा-मोटा मकान और दस-बीस हजार रुपये छोड़ जायं, पर उन्हें यह चाहिए कि अब जायदाद में कोई नया साझेदार उत्पन्न न करें। इस सम्बन्ध में उन्होंने किया तो कुछ भी नहीं था, पर उनकी नैतिक सहानुभूति विश्वम्भर-नाथ के साथ हो गई थी।

पर कृष्णकुमार यह चाहता था कि राधासुन्दरी को जल्दी-से-जल्दी कोई लड़का हो जाय, क्योंकि ऐसा होने पर वे समझते थे कि उनका काम बनेगा। इस कारण जब शादी के बाद कई महीने गुजर गये, और लड़का होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ा, तो कृष्णकुमार बहुत शंकित हुआ। उसने अपनी शंका की बात रूपा से कही। रूपा स्वयं भी इस सम्बन्ध में चिन्तित थी।

पति-पत्नी में इस सम्बन्ध में विचार विनिमय हुआ। रूपा-बोली—न हो तुम उनसे कहो कि कोई दवा दारू करें।

कृष्णकुमार ने मुंह बनाते हुए कहा—अरे बाप रे! उनसे मैं कहूं दवा खाने के लिए? यों ही वे मुझ पर शक करते हैं कि मैं उन्हें मार डालना चाहता हूं। यदि मैं दवा का नाम भी ले लूं, तो अनर्थ हो जाय। उस बार खैरियत रही कि कालीनवाले मामले के बावजूद उन्होंने विशेष कुछ नहीं कहा, और हम लोग उनके घर से सही सला-मत निकल आये। अब अगर मैंने दवा का नाम लिया, तो वे न

मालूम क्या समझ बैठें, और बहन के यहां आना-जाना भी बन्द हो जाय। नहीं बाबा मैं उनसे कुछ नहीं कहने का।

—तो फिर अपनी महारानी बहन से कहो।

—वह भी न मालूम क्या समझे!

—क्या समझेगी? क्या कोई दूधमुंही बच्ची थोड़े ही है। तुम भले ही उसे दुधमुंही समझो, पर मैं तो यही समझती हूं कि वह अपना स्वार्थ खूब समझती है।

कृष्णकुमार ने कहा—समझना तो चाहिए, पर कह नहीं सकता। फिर भी अपना काम तो यही है कि ऊंच-नीच से आगाह कर दिया जाय, आगे वह जाने, और उसका काम जाने।

रूपा को यह बात पसन्द नहीं आई। बोली—तुम्हारे लाड़ प्यार ने ही उसे सिर पर चढ़ा रखा है, नहीं तो भला तुम कोई बात कहो, और वह उसे न सुने। इतना तो वह समझती ही होगी कि लाला दीनानाथ के आंख मूंदते ही उसे फिर तुम्हारे ही आश्रय में आना है—कहकर उसने मुंह फुला लिया।

कृष्णकुमार बोला—क्यों, क्यों? लालाजी उसके लिए सारी व्यवस्था कर जाएंगे।

—कर क्या जाएंगे? मकान, रुपये, गहने छोड़ जाएंगे। इससे अधिक तो कुछ नहीं कर सकते। मैंने सुना कि उनके लड़के पावें, तो राधा को कच्चा चबा जावें, इसलिए उसकी रक्षा का भार तो तुम्हीं पर रहेगा। एक तो जवानी, तिस पर धन, ऐसी हालत में हम तुम उसकी रक्षा न करें तो कौन करेगा?

कृष्णकुमार ने आधी बात सुनी आधी नहीं सुनी। उसके दिमाग में एक नई बात आई थी। वह एकाएक बोल पड़ा—पर तुमने एक बात सोची है?

स्वर की गम्भीरता से प्रभावित होकर पहले से अधिक जागरूक होकर रूपा बोली—कौनसी बात?—कहकर वह उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

—मान लो लाला दीनानाथ का और कोई लड़का पैदा नहीं होता, तो उस हालत में राधा को जो भी थोड़ी-बहुत जायदाद मिलेगी, वह अपनी ही रहेगी। पर यदि कोई लड़का या लड़की पैदा हो गई, तो मिलेगी तो जायदाद बहुत अधिक, पर उसकी एक कौड़ी पर भी हमारा हक नहीं होगा।

—हक तो किसी भी हालत में एक भी कौड़ी पर नहीं होगा। अपनी बुद्धि से जो-कुछ ले लो वही अपनी होगी। नहीं तो हाथ उठा-कर कौन एक भी कौड़ी दिये देता है? लड़का या लड़की हो भी जाय, तो वह एक दिन में तो सयाना नहीं हो जायगा। उसके रक्षक और अभिभावक तो हमीं लोग रहेंगे। उस लड़के या लड़की के सौतेले भाई तो उसकी फिक्र करने से रहे। वे तो यही चाहेंगे कि यह बाधा दूर हो, जिससे कि जायदाद फिर से उन्हीं मे लौट जाय।

इस प्रकार यही तय रहा कि राधा सुन्दरी की कोई सन्तान उत्पन्न हो तो अच्छा है। अब इस बात पर सलाह होने लगी कि इस सम्बन्ध में क्या किया जाय, क्योंकि काफी देर हो गई थी, और अब कुछ करना जरूरी था, इस सम्बन्ध में दोनों सहमत थे। लाला दीनानाथ पर किसी किस्म की कार्रवाई तो असम्भव थी। इसलिए उनको छोड़कर ही कुछ किया जाय, यही तय रहा।

रूपा बोली—लालाजी ऐसे कुछ बूढ़े नहीं हैं कि उनकी सन्तान न हो सके—कहकर उसने अपने मामा और चाचा और ताऊ और न मालूम किस किसको गिना दिया, जिनकी अधिक उम्र में सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। बोली—क्या पता ऐब लालाजी में न हो, तुम्हारी बहन में ही हो।

कृष्णकुमार को इस रूप में यह मन्तव्य पसन्द नहीं आया। पर वह तो आज कोई व्यावहारिक कदम उठाना चाहता था, बोला—तो फिर उसी से काम शुरू करो। उसे ले जाकर किसी लेडी डाक्टर से जांच करवाओ।

रूपा इसके लिए तैयार हो गई, पर पति पर एहसान जताने के लिए बोली—मैं जाती हूं पर कहीं महारानी जी मेरा अपमान न करें।

कृष्णकुमार के मनमें भी यह सन्देह था कि पता नहीं राधा सुन्दरी लेडी डाक्टर से अपनी जांच करवाने पर राजी होगी भी या नहीं। ननद भौजाई में तो कभी बनी नहीं। बोला—तुम जाओ, यदि कोई गड़बड़ी हुई, तो मैं चलकर समझाऊंगा।

यही तय रहा।

: २० :

लेडी डाक्टर ने अच्छी तरह जांच करने के बाद कह दिया—आपकी ननद में किसी प्रकार का कोई ऐब नहीं है।

रूपा ने चिन्तित होकर कहा—अगर ऐब नहीं है तो लड़का क्यों नहीं होता ?

लेडी डाक्टर साबुन से हाथ धोकर तौलिया में हाथ पोंछती हुई हंसकर बोली—यह तो सब ईश्वर की लीला है। हम केवल इतना ही कह सकती हैं कि इन में कोई ऐब नहीं है।

रूपा को फिर भी सन्तोष नहीं हुआ। शायद यह बात उसके चेहरे से झलक गई। लेडी डाक्टर ने इस बात को भाप लिया, बोली—हो सकता है कि इनके पति में ही कोई कसर हो। उनकी जांच करवाइये।

रूपा बोली—आप कुछ नहीं कर सकतीं ?

—मरीज़ को लाओ तब देखा जायगा।

रूपा बोली—वे तो नहीं आ सकते।

—तो फिर मैं भी कुछ नहीं कर सकती।

रूपा ने लेडी डाक्टर को अलग ले जाकर फिर भी कहा—आप मेरी ननद में कुछ ऐसी बात नहीं कर सकतीं जिससे कि उसका वंश चले ?

लेडी डाक्टर ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—यदि आप लोगों को इनके वंश चलाने की फिक्र थी, तो इनकी शादी किसी नौजवान पट्ठे से कर दी होती, तब तो यह अब तक मां हो जाती ।

इस पर रूपा ने कहा—शादी तो अपने-अपने भाग्य से होती है, ऐसा हम लोग मानतीं हैं।—कहकर उसने फीस अदा की, और ननद का हाथ पकड़कर लाला दीनानाथ को गाड़ी में सवार हो गई। रास्ते में वह बराबर डाक्टरों की बुराई करती रही। बोली—इन डाक्टरों को कुछ भी तो आता-जाता नहीं है। उनको इनमें बड़ा विश्वास है, तभी तो मैं यहां पर आयी। कलमुंही कहती क्या है कि किसी नौजवान पट्ठे से शादी होती तो अब तक मां हो जाती। भला बताओ कि यह भी कोई कहने की बात है। शादी तो परमात्मा के यहां से तय होकर आती है। जन्म, मृत्यु, विवाह इन तीनों पर कभी किसी का वश चला है ? और लालाजी से बढ़कर वर कौन हो सकता है ? देखो ! मुझे देखो, मैं तो बिल्कुल मज़दूरनी हूं, पर तुम, तुम तो राजरानी हो। अपना मकान है, अपनी गाड़ी है, अपने गहने और रुपये हैं। किसी बात की कमी नहीं है...और एक स्त्री को क्या चाहिए ?

रूपा इस प्रकार कहती गई, पर जिसे ये बातें कही जा रही थीं, उसने इनमें कोई विशेष उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। यों ही भाभी से उसकी कभी नहीं बनी, तिस पर लेडी डाक्टर ने जो-कुछ कहा उससे उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। यद्यपि वह रूपा की तरह चालाक नहीं थी, फिर भी वह सहजात बुद्धि से इतना तो समझती थी कि यदि उसे एक बच्चा हो जाय, तो उसकी स्थिति बहुत सुरक्षित हो जाय। अब उस विषय में बिल्कुल निराशा हो जाने के कारण उसके सामने एक ही सम्भावना थी, जो यह थी कि आज हो, कल हो उसे भाई और भाभी के आश्रय में लौट जाना है। अवश्य आश्रय में लौट जाने का अर्थ अब

यह नहीं था कि वह फिर से नौकरानी या उससे भी बदतर हो जाय।

रूपा बोलती जा रही थी। बोली—मैं तो पहले से ही कहती थी कि झाड़-फूंक, जादू-टोना कराया जाय तो काम बनेगा, पर तुम्हारे भाई साहब के सिर पर डाक्टरों का ऐसा भूत सवार है कि ख्वामख्वाह इस चुड़ैल को ३२ रुपये दिलवा दिये। काम तो कुछ भी नहीं बना, और ऊपर से उपदेश सुनने को मिले।

अब तक राधा सुन्दरी अपनी भाभी की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही थी। पर ज्यों ही उसने झाड़-फूंक और जादू-टोना का नाम सुना, उसके कान खड़े हो गये। यद्यपि उसने झाड़-फूंक या जादू-टोना का व्यावहारिक रूप नहीं देखा था, फिर भी जैसा कि विश्वास रखनेवाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है उसमें उनके प्रति पूरा विश्वास था। बोली—झाड़-फूंक कैसी ?

—यह भी तुम नहीं जानती हो ? जानोगी कैसे ? शहरवाले तो इन बातों में विश्वास नहीं करते, पर हमारी तरफ ऐसे-ऐसे साधू, महात्मा, ओझा, औलिया पड़े हुए हैं कि जो जिस बात को मांगता है, उसे वही बात मिलती है। और खर्च भी कोई ज्यादा नहीं। इस चुड़ैल ने तो बात ही बात में ३२ रुपये ले लिए। पर वहां तो ज्यादा-से-ज्यादा मांगेंगे, तो एक मुर्गी, एक बकरा, सवा रुपया नकद, एक अंगोछा या धोती और दो-एक रुपये की अलाय बलाय। सब मिलाकर ३२ रुपये नहीं होंगे। शहरवाले उन्हें तो बेईमान और चोर कहेंगे, पर ये जो डाक्टर बन-बनकर बैठी हैं, दस दफे एक ही बात पूछती हैं, इन्हें बड़े मजे में रुपये गिनाकर चले आते हैं।—कहकर उसने फैसला-सा देते हुए कहा—मैं तुम्हारी झाड़-फूंक करवाऊंगी, सो चाहे उसमें जितना भी खर्च आवे।

राधा सुन्दरी ने कहा—खर्च की कोई बात नहीं पर काम तो बन जायगा न ?

—जरूर, जरूर। मैंने सैकड़ों बांझों के लड़के होते सुने, और दो-

चार देखे भी। हर बलाय का एक भूत होता है। वह आकर शरीर में आश्रय लेता है। हम लोग इन भूतों को देख नहीं सकतीं, पर ये साधू, महात्मा, ओझा उन भूतों को प्रत्यक्ष देख लेते हैं। या तो वे मंत्र से भूत को यों ही भगा देते हैं, या तो वे उस भूत के पीछे उससे भी किसी जबर्दस्त भूत को भेज देते हैं, जिससे कि वह पहले वाला भूत भाग निकलता है। कई भूत तो बड़े जिद्दी और झगड़ालू होते हैं, और बड़ी लड़ाई करते हैं। कहते हैं कि मैं नहीं जाऊंगा, पर ये ओझा भी ऐसे भयंकर होते हैं कि भूत को भगाकर ही दम लेते हैं। ओझों के मुंह से खून आ जाता है, वे बेहोश-से पड़ जाते हैं, फिर भी वे मंत्र बोलना नहीं छोड़ते...

इस प्रकार रूपा ने ब्यौरे में सारा भूत-शास्त्र बता डाला। सुन कर राधा सुन्दरी प्रभावित तो हुई, पर साथ ही शंकित हुई, क्योंकि इस प्रकार का एक भयंकर भूत उसके शरीर में आश्रय लिये हुए है, यह ज्ञान उसके लिये कुछ भी रुचिकर नहीं हो सकता था। वह भाभी के और पास आकर बोली—तो क्या होगा? कहीं लालाजी राज़ी न हुए तो?

—राज़ी कैसे नहीं होंगे? मैं खुद समझाऊंगी। ऐसा एक भूत घर में बना रहे तो सबके लिए शंका की बात है। किसी दिन लालाजी पर भी तो सवार हो सकता है—कहकर उसने राधा सुन्दरी के कान के पास मुंह लाते हुए बहुत धीरे-से कहा—और मैं जानती हूं कि यह भूत कहां से आया। यह सब तुम्हारे सौतेले लड़कों की शरारत है। जब तक तुम अपने भाई के यहां थीं, तब तक तो तुम पर कोई भूत नहीं था। मालूम होता है बाद को यह भूत कहीं से भेजा गया है।

इस प्रकार बातचीत करती हुई दोनों लालाजी की हवेली में पहुंच गईं। लालाजी को यह बताया ही नहीं गया था कि राधा सुन्दरी लेडी डाक्टर के यहां गई है, इस कारण इस सम्बन्ध में कोई बातचीत छेड़ना उचित नहीं समझा गया। राधा सुन्दरी अब, इस मत की हो चुकी थी

कि उसके शरीर से भूत जितना जल्दी भगा दिया जाय, उतना ही अच्छा है। इसलिए उसने भाभी को बिदा करते हुए स्वयं ही कहा—ओझा को जितना जल्दी बुलवा लो उतना ही अच्छा है।

अब रूपा कड़ी कठिनाई में पड़ी। यों जोश में उसने कुछ सुनी बातों से और कुछ कल्पना से साधु, महात्मा, ओझा की बात बताई थी, पर सारे जीवन में ऐसे एक भी व्यक्ति से उसका साबका नहीं पड़ा था। फिर भी अकड़ती हुई बोली—ऐसे लोग कहीं बुलाने से आते थोड़े ही हैं ? यों चाहे वे डोम के घर खुद चले जायं। वे कोई डाक्टर थोड़े ही हैं कि फीस दो तो चले आयेंगे।

—तो फिर ?

—तो फिर क्या ? हमें ही ढूंढकर उनके पास जाना पड़ेगा। वे कोई अखबारों में इश्तहार तो छपाते नहीं। इसलिए उनके पास पहुंचना हमारा काम होगा। न हो हम लोग बदायूं चली चलेंगी।

—तो फिर उसके लिए तो लालाजी की अनुमति लेनी पड़ेगी।

—हां, कल मैं आकर सब ठीक करूंगी।

—जरूर आना भाभी। मैं तो भूत से बहुत घबड़ा गई हूं।

रूपा अपनी ननद को आश्वासन देकर घर चली गई।

: २० :

सुरेन्द्र मोहन वीणा से अक्सर मिला करता था। पर इधर दोनों के सिर पर इम्तहान आ जाने के कारण कई दिनों से कालेज के बाहर अलग से मिलना नहीं हो सका था। लोगों के सामने कालेज के हाते में जो मिलना होता था, उसमें कोई खास बातचीत नहीं हो पाती थी।

सामने इम्तहान थे, इस कारण यह सम्भावना थी कि कम-से-कम दस दिनों तक यही परिस्थिति रहेगी।

जब इम्तहान बिल्कुल सिर पर आ गये, याने उनके शुरू होने के एक दिन पहले सुरेन्द्र मोहन ने मौका लगाकर वीणा से कहा—आज कहीं मिलना चाहिये ? क्या कहती हो ?

वीणा बोली—हां, पर इम्तहान जो हैं।

—जरूरी बातचीत करनी है।

—मेरी अभी कुछ पढ़ाई बाकी है। क्यों न एकदम निश्चिन्त होकर बाद को मिला जाय।

इतने पर भी सुरेन्द्र मोहन ने जिद करते हुए कहा—जरूरी काम है।

वीणा ने एक मिनट तक सोचा, फिर बोली—कहती हूं पढ़ाई बाकी है। अगर मैं फेल हो गई, तो मुंह दिखाने लायक नहीं रहूंगी।

—पांच-दस मिनटों में क्या आता-जाता है ?

वीणा को यह जिद अच्छी नहीं मालूम हुई। बोली—जरूरी काम क्या है ? कुछ रुपयों की जरूरत है ?

यद्यपि प्रश्न बहुत साधारण था, फिर भी सुरेन्द्र मोहन को बुरा लग गया, बोला—क्या हमारे-तुम्हारे बीच रुपये लेने-देने का ही एकमात्र सम्बन्ध है ? मैं यहां खड़े-खड़े क्या बताऊँ कि क्या जरूरत है—कहकर उसने कुछ मुंह फुला-सा लिया।

वीणा कुछ कहने ही जा रही थी, और वह जो-कुछ कहती, शायद उससे परिस्थिति साफ हो जाती, पर इतने में उधर से एक छात्र आया, जो दोनों का परिचित था। इन दोनों ने चाहा कि उसकी तरफ न देखें, और वह बगल से निकल जाय, पर वह छात्र आकर बीच में खड़ा हो गया। बोला—क्या बातचीत हो रही है ?

सुरेन्द्र मोहन बोला—यही बातचीत हो रही है कि पढ़ाई अच्छी तरह हो नहीं हो पाई, और परीक्षा आ गई।

वह छात्र बोला—कौन-सी परीक्षा ?—कहकर वह हंसा।

इस पर इन दोनों को भी हंसना पड़ा। वह छात्र बोला—कालेज की परीक्षा तो मामूली है, पर जीवन की परीक्षा असली है। कालेज की परीक्षा में फेल हो तो कोई बात नहीं, फिर दी जा सकती है, पर उसमें फेल नहीं होना चाहिये—कहकर उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से दोनों को देखा।

इसी प्रकार की बातें कुछ देर तक होती रहीं। सुरेन्द्र मोहन और वीणा ने बहुत चाहा कि यह छात्र चला जाय, पर उसने उन लोगों का पिंड नहीं छोड़ा। दो-एक छात्र इधर-उधर से और आ गये। मौका लगाकर वीणा इस गिरोह में से अलग चली गई। इस प्रकार सुरेन्द्र मोहन और वीणा की बातचीत बीच में ही रह गई।

अगले दिन वीणा जब परीक्षा देकर विश्वविद्यालय के हाल में से निकल गई, तो उस समय सुरेन्द्र मोहन ने जो, शायद इसी ताक में बैठा था, उसके हाथ में एक लिफाफा दिया, और जल्दी से चला गया। सुरेन्द्र मोहन के लिए ऐसा करना कोई नई बात नहीं थी। अक्सर दोनों में इस प्रकार पत्र-व्यवहार होता था। कभी-कभी किताबों के लेन-देन के बहाने भी पत्रों का आदान-प्रदान होता था। इस कारण वीणा ने इसमें कोई असाधारण बात नहीं देखी। उसने लिफाफे को बहुत साव-धानी से रख लिया, और घर चली गई।

जब उसने घर पहुंचकर उस लिफाफे को खोला, तो उसमें से एक पत्र और सौ के कुछ नोट तथा अन्य छोटे-मोटे नोट निकले। पत्र बहुत संक्षिप्त था। वह इस प्रकार था :

प्रिय वीणा,

मैं इस पत्र को किसी प्रकार के आवेश में नहीं लिख रहा हूं। अब तक कुछ ऐसा संयोग रहा कि यदा-कदा मैं तुम से कुछ रुपये लेता रहा। तुमने स्वयं ही बार-बार दबाव डाला था, तभी मैंने रुपये लेना स्वीकार किया था। फिर तो कई बार लेता रहा। सौभाग्य से मैंने अब तक जो कुछ लिया, उनका कोई लिखित हिसाब न रखने पर भी मुझे सारा

हिसाब याद है। उस दिन की बातचीत से मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि रुपये लेकर मैंने गलती की। जो-कुछ भी हो, अब मेरे-तुम्हारे बीच के सम्बन्ध को सहज और सरल बनाने के लिए मुझे यह आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि मैं इन रुपयों को लौटा दूँ। तदनुसार ये रुपये लौटाये जा रहे हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, यद्यपि मैं बहुत मामूली मध्यवित्त परिवार का हूं, रुपये कोई महत्व नहीं रखते। मेरे लिए तो एक ही बात महत्व रखती है, वह है तुम्हारा-हमारा प्रेम। उसको बचाने के लिए मैं इन रुपयों को वापस कर रहा हूं। तुम विश्वास रखो कि ऐसा करने में मैंने किसी प्रकार के आवेश से काम नहीं लिया है।

उस दिन मौका नहीं मिला, पर मैं यह स्पष्ट कर दूं कि उस दिन जिस जरूरी काम का मैंने उल्लेख किया था, उसके साथ रुपयों का कोई सम्बन्ध नहीं था। आशा करता हूं कि तुम अच्छी तरह परीक्षा दोगी। परीक्षाओं के बाद ही अब भेंट होगी।

तुम्हारा ही हमेशा
सुरेन्द्र

इस पत्र को पढ़कर वीणा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने बहुतेरा स्मरण किया पर उसे यह याद नहीं आयी कि उसने उस दिन कोई ऐसी बात कही थी, जिससे इस प्रकार का पत्र मिलता। उसे कुछ क्षोभ हुआ कि सुरेन्द्र मोहन ने उसे गलत समझा। वह सुरेन्द्र मोहन की आर्थिक परिस्थिति से भली भांति परिचित थी, इस कारण वह यह समझ गई कि इन रुपयों को प्राप्त करने में उसे काफी कष्ट उठाना पड़ा होगा। इस पर उसका मन कुछ पसीज गया। यदि सुरेन्द्र मोहन सामने होता, तो वह उसके गले में बांह डाल कर समझा लेती। जरूरत होने पर रोती-धोती भी पर इस समय मोहन सामने नहीं था। थे उसके लौटाये हुए रुपये। उन्हें देखकर उसके मन की कोमल भावनाएं विलुप्त हो गईं। कुछ ऐसा विचार मन में आया कि यों तो सुरेन्द्र मोहन लिखता है कि वह रुपयों को कोई महत्व नहीं देता, पर

उसने इन रुपयों को लौटा कर यही दिखलाया कि वह रुपयों को बहुत महत्व देता है। नहीं तो इन आठ-नौ सौ रुपयों को लौटाने की क्या जरूरत थी ?

वह इसी प्रकार उधेड़-बुन में पड़ी हुई थी कि इतने में उधर से सत्यभामा के आने की आहट हुई। वीणा ने जल्दी से पत्र और नोटों को बटोर कर छिपा दिया।

सत्यभामा इधर ही आई। बोली—देख! खबर आई है कि तेरे चाचा जी एकाएक बीमार हो गये। वे तो घर पर हैं नहीं, इसलिए मेरा या तेरा फौरन जाना जरूरी है। इधर मैं मिसेज़ रामसिंह और दो-तीन लेडियों का इन्तजार कर रही हूं। यों ही ब्रिज पार्टी के लिए बुला लिया था। अगर तू जाय तो ठीक रहे...

वीणा ने कुछ मुंह बनाते हुए कहा—मुझे फुर्सत कहां है ? कल इंगलिश का पेपर है।—कहकर उसने सामने पड़ी हुई एक किताब को उठा लिया, बोली—तुम्हीं चली जाओ।

सत्यभामा बोली—दस-बीस मिनट के लिए चली जा। तेरे लिए तो यह भी है कि परीक्षा के बहाने जल्दी चली आ सकती है, पर मैं जाऊंगी तो मुझे घंटों बैठना पड़ेगा। और तू जानती है कि सुमित्रा की वजह से वहां किस तरह कलह रहता है। उस लड़की को देखकर मुझे बड़ा तरस आता है।

यों तो वीणा मना कर रही थी, पर सुमित्रा का नाम सुनते ही उसे यह स्मरण हो आया कि उस दिन उसने सुमित्रा से यह प्रकट कर दिया कि सत्यभामा ने उसकी शादी टूटने का रहस्य उसे बता दिया। सम्भव है कि भेंट होने पर सुमित्रा इस बात पर सत्यभामा से लड़े। यह बात याद आते ही वह एकाएक स्वर बदलती हुई बोली—मैंने तो अच्छी तरह सुना ही नहीं था। चाचा जी बीमार हैं, और मैं न जाऊं ? मैं फौरन जाती हूं—कहकर वह आइने के सामने गई। और प्रसाधन करने लगी।

चाचा के यहां पहुंचने पर मालूम हुआ कि बीमारी कोई विशेष नहीं है। उन्हें जो पुरानी धड़कन की बीमारी थी, वही इस समय जोर कर गई थी। जब वीणा पहुंची तो बीमारी का प्रकोप शान्त हो चुका था, और इस समय चाचा जी सो रहे थे। इस कारण वीणा मामूली पूछताछ के बाद सुमित्रा के कमरे में चली गई।

इधर-उधर की बातों के बाद सुमित्रा ने अर्थपूर्ण ढंग से वीणा से पूछा—और सुनाओ क्या बात है?

—कोई खास बात नहीं।

फिर भी सुमित्रा ने जिद की, तो उसने उस दिन सुरेन्द्र मोहन से बातचीत से लेकर उसके द्वारा रुपये तथा पत्र भेजने की बात तक सारी बातें बता दीं। यहां तक कि जल्दी में उसने जो नोट तथा पत्र अपने बैग में छिपा लिए थे, उन्हें भी निकालकर दिखा दिया।

सुमित्रा इन चीजों को देखकर तथा पत्र पढ़कर बोली—अब क्या सोच रही हो?

वीणा बोली—मैं तो कुछ सोच नहीं पायी। मुझे तो इस बात से बड़ा धक्का-सा लगा है। मैंने कोई ऐसी बात कही तो थी नहीं, फिर इन तुच्छ रुपयों को लौटाने की क्या जरूरत थी?

सुमित्रा बीच में ही बोल पड़ी—पुरुष रुपयों को किसी भी हालत में तुच्छ नहीं समझते। उनके लिए तो सारी खुदाई एक तरफ़, और रुपये एक तरफ होते हैं। रुपये साधन हैं न कि लक्ष्य, इस बात को वे अक्सर भूल जाते हैं जिसके कारण स्त्रियों का जीवन दूभर हो जाता है...

—पर यहां तो बिल्कुल उलटी बात है। मैं तो यह कह रही थी कि जहां प्रेम का सम्बन्ध है, वहां थोड़े से रुपये इधर हुए या उधर हुए, इससे क्या आता-जाता है? यदि उनको क्रोध या अभिमान दिखलाना था, तो किसी और रूप में दिखलाते।

—हां, यही तो मैं भी कह रही हूं। तू तो अब सब-कुछ जानती है, मेरा जीवन इसी कारण नष्ट हो गया।

सुमित्रा ने कुछ देर रुककर जैसे किसी बहुत पुरानी बात को याद कर कहा—देख मैं कभी तेरी ही तरह एक अधखिली कली थी। मैं अभी अपना नन्हा-सा मुखड़ा खोलने ही लगी थी। जगत बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहा था। रूप-रस-गन्ध-सिक्त इस जगत का पहला स्वाद बहुत मधुर प्रतीत हुआ। मैं आनन्द-विभोर होकर किसी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। इतने में भौंरा बनकर ये प्रोफेसर आये। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि ये जीवन के प्रतिनिधि हैं, यौवन के पुरोहित हैं, इस सुन्दर जगत के प्रतीक हैं। मैंने उन्हें अपनाया, जी खोलकर, सब-कुछ खोलकर मैंने उत्कर्ण, उन्मुख, उन्नासिक, उदग्र होकर उनका स्वागत किया, उन पर अपने को न्यौछावर कर दिया, पर क्या हुआ?

वीणा कुछ कहने जा रही थी, पर एक आज्ञा-मूलक इंगित से उसे निरस्त कर वह कहती गई—मुझे यह मालूम नहीं था कि पुरुष छलिया, निर्दय, स्वार्थी, कपटी होता है....

—पर बहन...

—पर-वर कुछ नहीं। क्या मैं इस लायक थी कि दस-दस रुपये पर मुझसे जवाब तलब किया जाता? मेरे प्रेम का दाम, मेरे आत्म-समर्पण का दाम दस रुपये भी नहीं था?—कहकर वह आत्महारा-सी होकर सिसकने लगी।

यद्यपि वीणा अब भी सुमित्रा के दृष्टि-विन्दु से चीजों को देख नहीं पा रही थी, फिर भी किसी को रोते-सिसकते देखकर उसे डर मालूम होता था, बोली—बहन जो हो गया, सो हो गया, उस पर इतना अफसोस क्या?

सुमित्रा को जैसे इस बात से और उत्तेजना मिली। बोली—तुम इसे हो गया कहती हो?

—हां इतने साल हो गए।

—साल हो गए, ठीक है, पर मैं तो अभी तक उसे भुगत रही हूं...

—हां पर...

—तुम्हारे लिए, मां के लिए, चाची के लिए यह सब भूतकाल की बातें हैं, इतिहास या सरस कुत्सा की बातें हैं, पर मैं तो उसी घटना की मारी हुई हूं। अभी तक उसी चोट से बिलबिला रही हूं। चिल्लाती नहीं हूं, इससे यह न समझो कि घाव भर गया है। वह तो नासूर के रूप में है, और शायद तब तक रहे जब तक मैं मर न जाऊँ।

वीणा फिर बोलने को हुई, पर सुमित्रा ने अपनी वाक्य-धारा के सामने उसके वक्तव्य को एक पहाड़ी नदी के मार्ग के छोटे-से पत्थर की तरह बहाकर बोली—तुम क्या कहती हो? तुम भी तो अपने छोटे-से तजर्बे में यह देख चुकी हो कि पुरुष कितना नीच होता है। आखिर रुपये लौटाने की क्या बात थी?

वीणा कुछ नहीं बोली।

वीणा के इस मौन को सम्मति तथा प्रोत्साहन समझकर सुमित्रा बोली—तुमने तो अच्छे सेन्स में ही कहा होगा कि रुपये लेने हैं?

—हां।

—पर उन्होंने उसे ताना और शायद चेतावनी और तकाज़े के रूप में लिया। इसीलिए मैं कहती हूं कि पुरुष नीच होते हैं। उनमें प्रेम करने की शक्ति नहीं है। रुपये को वे प्रेम और कथित प्रेमपात्री से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

वीणा ने क्षीण-सा प्रतिवाद करते हुए कहा—पर सभी पुरुष एक से नहीं होते बहन।

—रहने दो यह भ्रम है....

—नहीं नहीं भ्रम नहीं, यह सत्य है। भ्रम बल्कि यह है कि कुछ पुरुष ही ऐसे होते हैं। मैं देख चुकी सब पुरुष ऐसे हैं, तुम देख रही हो, पुरुष ऐसे हैं?

—फिर सृष्टि कैसे चलेगी?

—क्या मतलब?

सब लोगों ने तुम्हारी तरह औदासीन्यव्रत धारण कर लिया तो

यह सृष्टि कैसे चलेगी ?

सुमित्रा तैश में आ गई, एकाएक नाराज़ होती हुई बोली—सृष्टि कैसे चलेगी यह तुम्हारी हमारी फिक्र करने की बात है ? जिसने सृष्टि बनाई, यदि उसने इसका खयाल नहीं रखा तो हम क्या करें ? यह कैसी सृष्टि है जिसमें एक ही यात्रा में पुरुषों के लिए अलग फल है, और हम स्त्रियों के लिए अलग फल ?

इसी लहजे में सुमित्रा बहुत-कुछ कह गई, यहां तक कि वीणा को यह अनुभव हुआ कि वह फिर अपनी पुरानी शिष्यावाली परिस्थिति में पहुँच गई।

वह बोली—बहन, जिन बातों को कह रही हो, वे अर्द्ध सत्य हैं। तुम इन अर्द्ध सत्यों को चाहे जितना सुन्दर रूप में परोसो और जोश से भरकर चाहे उन पर जितना गोरत-पोश्त देने की चेष्टा करो, वे न तो सत्य की मर्यादा प्राप्त कर सकते हैं, और न उनमें जीवन-संचार हो सकता है...

कहकर सांस लेती हुई बोली—मैं यह कभी नहीं मानूंगी कि सभी पुरुष खराब हैं, सभी छलिया और कपटी हैं। तुम चाहे इसे मेरी नातजुर्बेकारी समझो, पर यही मेरी राय है।

सुमित्रा शान्त हो चुकी थी। मन-ही-मन वह अपनी अन्धी गलीवाली परिस्थिति समझती थी, पर वह इसे कहती कैसे। वह कैसे बताती कि अपने अन्तःकरण में वह भी उसी नतीजे पर पहुंच चुकी थी, पर वह पुरुष कहां था जो अपनी जादू की लकड़ी से उसके जीवन के पाषाण में प्राण संचार कर देता।

सुमित्रा खुल नहीं सकती थी, इसलिए खुली नहीं। वीणा कुछ खुली, पर पूरा नहीं खुलना चाहती थी, इस कारण वह सिमटी रही। अजीब अर्द्धकाल्पनिक सतह पर बातें होती रहीं, पल्ले कुछ विशेष नहीं आया। दोनों के बीच में अपना-अपना इतिहास रहा।

बातें करते-करते घंटे निकल गये।

यद्यपि सुमित्रा और वीणा के मामले बिल्कुल भिन्न थे, हां दोनों में इतनी सामान्य बात थी कि दोनों क्षेत्रों में पुरुषों का कोई दोष नहीं था, फिर भी बातचीत करते-करते दोनों इसी नतीजे पर पहुंचीं कि सुरेन्द्र मोहन ने बड़ा भारी अपराध किया है, और वीणा सुमित्रा के यहां से यही धारणा लेकर लौटी। सुमित्रा ने उसके मन में इस धारणा की बेलि भी बो दी कि जब अभी यह हाल है, तो बाद को चलकर क्या हाल होगा। अपनी मां के द्वारा बोया हुआ पहला सन्देह तो उसके दिमाग में था ही कि वह कहां तक गरीबी का सामना कर सकेगी।

: २१ :

यद्यपि लाला दीनानाथ को और पुत्र प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं थी, फिर भी जब उन्होंने देखा कि राधासुन्दरी इस बात पर जान दे रही है, तो वे उसे अपनी भाभी के साथ जान देने के लिए राजी हो गए। विवाह करने के बाद से ही बराबर उन्हें यह धारणा रही कि इस उम्र में एक नवयुवती से विवाह कर उन्होंने गलती की। वे यह समझते थे कि रुपयों के जोर से उन्होंने उसके साथ अन्याय किया है। इसी अन्याय-बोध के कारण उन्होंने राधासुन्दरी को किसी बात का अभाव रहने नहीं दिया था। यह तो खैर छोटी बात थी, ऐसा तो वे हर हालत में ही करते, पर सबसे बड़ी बात जो उन्होंने की थी, वह यह थी कि उन्होंने बार-बार कृष्णकुमार तथा उसकी स्त्री को क्षमा किया था। वे जानते थे कि कृष्णकुमार तथा रूपा की एकमात्र दिलचस्पी यह है कि वे जल्दी मर जाएं, जिससे कि उनकी जायदाद के एक हिस्से पर उनका कब्जा हो जाए। वे यह भी जानते थे कि कृष्णकुमार अथवा रूपा को

राधासुन्दरी से कोई प्रेम नहीं है। इसी कारण उन्होंने सोचा कि यदि एक सन्तान उत्पन्न हो जाय, तो राधासुन्दरी के लिए जीने का एक सहारा हो जाय, साथ ही उनकी सम्पत्ति का हिस्सा चाहे वह कितना भी छोटा हो, कृष्णकुमार के चंगुल में पड़ने से बच जाय।

उन्होंने राधासुन्दरी से पहले कहा—डाक्टरी इलाज करवाओ, झाड़-फूंक से क्या होगा?

पर वह तो पहले ही लेडी डाक्टर से जांच करवा चुकी थी, वह किसी प्रकार डाक्टरी इलाज के लिए राजी नहीं हुई। तब लाला दीनानाथ को राजी होना पड़ा, और उन्होंने बदायूं-यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी।

पत्रा देखकर रूपा और राधासुन्दरी रवाना हो गयीं। कृष्णकुमार उन्हें पहुंचा कर वापस चला आया।

बदायूं पहुंचते ही रूपा ने साधू, महात्माओं, ओझाओं की तलाश करवायी, पर बहुत खोज करने पर भी ऐसे किसी साधू, महात्मा या ओझा का पता नहीं लगा, जो कार्य सिद्ध कर सके। कहां तो वह कल्पना में यह समझती थी कि बदायूं की गली-गली में इस प्रकार के साधू, महात्मा, ओझा मारे-मारे फिरते होंगे, और वहां पता लगा कि कोई भी ऐसा साधू नहीं है। इससे उसे बड़ी निराशा हुई। कुछ शरम भी मालूम हुई कि लालाजी के इतने रुपये खर्च हुए, फिर भी यदि काम नहीं बना तो वह उन्हें कैसे मुंह दिखायेगी? झाड़-फूंक हो जाय, फिर भी काम न बने तो इसका सारा दोष भाग्य पर मढ़कर वह चुप बैठ सकती थी, और कोई कुछ कहता भी नहीं। पर इतना ढिंढोरा पीटकर वह लालाजी को राज़ी कर राधासुन्दरी को यहां ले आयी, और झाड़-फूंक तक नहीं हुई, यह तो बड़ी शरम की बात रहेगी।

उसने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि उसके भाई तथा अन्य लोग उसे मदद नहीं दे रहे हैं, और अच्छी तरह खोज नहीं कर रहे हैं। झुंझलाकर उसने अपने खान्दान के पुरोहित को बुलवाया, और प्रचुर दक्षिणा का लोभ दिखलाते हुए सारी बात कही।

सब बातों को सुनकर पुरोहितजी ने कहा—यों तो शान्ति-स्वस्त्ययन सारी बातों में काम आते हैं, और अलाय-बलाय को दूर रखते हैं, पर भूत भगाने के मंत्र मुझे नहीं आते।

इस बात से रूपा खुश नहीं हुई, पर कुछ न होने से कुछ होना अच्छा है, यह समझकर उसने पंडितजी को अन्य ब्राह्मणों की सहायता से अखंड पाठ करने दिया। पर इसमें न तो मुर्गी लगी, न बकरा लगा, न शराब की बोतल लगी, इस कारण रूपा के मन में कुछ सन्तोष नहीं हुआ। उसने जो सुन रखा था कि मंत्र की मार से भूत रोता-चिल्लाता है और बड़ी लड़ाई करता है, वह कुछ भी नहीं हुआ। फिर भी सात दिनों तक पंडितों का आना-जाना और शास्त्र-पाठ चलने के कारण कुछ तसल्ली हुई।

इस बीच में ओझों की खोज जारी रही। रूपा के एकमात्र भाई शिवनारायण ने बड़ी दौड़-धूप के बाद साफ कह दिया कि ओझा खोजना उसके वश की बात नहीं है।

रूपा इससे बहुत दुखी हुई, फिर भी उसने खोज जारी रखी। जिस पुरुष से भी वह इस बात का जिक्र करती, वह अक्सर उसका मजाक उड़ाता, पर स्त्रियां सहानुभूतिपूर्ण रुख लेतीं। फिर भी वे इस खोज में कुछ सहायता न दे सकीं, क्योंकि जो भी ओझा आदि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञानवाली बात करती, वह कम-से-कम दस साल पहले की बात कहती।

इस प्रकार रूपा ओझों के सम्बन्ध में करीब-करीब निराश हो गयी। यहां आये हुए पन्द्रह दिनों से ऊपर हो चुके थे, अब अधिक-से-अधिक पांच दिन और ठहरा जा सकता था। लाला दीनानाथ की चिट्ठी-पर-चिट्ठी आ रही थी, और साथ-ही-साथ कृष्णकुमार भी लिख रहा था कि लालाजी बहुत नाराज़ हो गए हैं।

इस प्रकार जब रूपा बिलकुल निराश हो गई थी, तब शिवनारायण एक दिन आकर बोला—आज रामनाथ मिला था।

—कौन रामनाथ ?

शिवनारायण बोला—तुम भूल गईं ? वही फूफाजी का लड़का, जो बचपन ही से गंजेड़ियों में बैठता है।

—हां तो क्या हुआ ?

—उसको मैंने सारा किस्सा कह सुनाया, तो उसने कहा कि उसकी जानकारी में दो एक ओझे हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से भूत भगा सकते हैं।

इतना सुनना था कि रूपा के कान खड़े हो गए। बोली—ठीक तो है, उसे कह दो कि उनका पता दे।

— वह तो खुद ही आ रहा था, मैं नहीं ले आया।

—उसे जल्दी-से-जल्दी बुलवाओ।

उसी दिन सन्ध्या समय रामनाथ रूपा के यहां उपस्थित हुआ। यों तो वह गंजेड़ी होने तथा दाढ़ी रखाने के कारण अद्भुत मालूम होता था, पर उसने वहां आते समय बड़े-बड़े रुद्राक्षों की माला पहिन ली थी, और आंखों में सुरमा भी लगा लिया था। रूपा ने उसे बहुत सालों के बाद देखा इस कारण वह उसे पहिचान न सकी। पर पहिचान पावे या न पहिचान पावे, उस पर रामनाथ के चेहरे का बहुत रोब पड़ा। उसकी कल्पना में ऐसे ही लोग साधू, महात्मा, ओझा के इर्द-गिर्द होते होंगे। यद्यपि उम्र में रामनाथ उससे दो ही एक साल का बड़ा था, फिर भी रूपा ने उसे साष्टांग प्रणाम किया। रामनाथ ने भी पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

चारों तरफ घूरकर रामनाथ बोला—वह मुसम्मात कहां है, जिस पर भूत सवार है ?

रूपा उठकर भीतर गई, और साथ में राधासुन्दरी को लेती आयी। राधा ने रामनाथ को जमीन छूकर प्रणाम किया। रामनाथ राधा को देखकर बोला—अरे ! यह तो कोई बड़ा भूत मालूम देता है। यों तो छोटे-मोटे भूत को मैं खुद ही उतार लेता हूं, पर अभी बड़े भूतों पर वश नहीं चलता।

रूपा ने शंकित होकर कहा—तो क्या होगा ? मैं तो परेशान हूं।

रामनाथ सारा किस्सा शिवनारायण से सुन चुका था। बोला—ऐसा मालूम होता है कि इस भूत को किसी ने भेजा है। वह स्वयं इस शरीर में नहीं आया।

रूपा बोली—यह तो मैंने पहले ही कहा था। यह सब लाला दीनानाथ की पहली स्त्री के लड़कों का काम है।

रामनाथ बोला—हां उनकी जान पहिचान में कोई बड़ा ओझा मालूम देता है। खैर हमारे पास ऐसे-ऐसे ओझे हैं कि मन्त्र के बल से उस ओझा को भी पकड़ लावें। पर एक बात है—कहकर वह राधा के पास गया, और उसे घूरकर बोला—यह भूत मुर्गी-उर्गी से नही मानने का। बकरा खाकर चढा है, तो इसके लिए ऐसा भूत चाहिए जो भैंसा खाकर इससे लड़े। पांच बोतल विलायती शराब चाहिये। और लोह-बान, पान वगैरह जो-कुछ चाहिए उसकी लिस्ट मैं बना दूंगा। और बात साफ कह दूं मैं जो इस खटराग में पड़ूंगा, सो मैं भी अपने खर्च पत्ते को कुछ लूंगा।

रूपा खर्च के नाम से कुछ बिदकी, पर अब परिस्थिति ऐसी थी कि वह किसी भी शर्त पर तैयार होती। अन्त में सारा मामला ३०० रुपये में तय हुआ।

रामनाथ ने अपने दो गंजेड़ी साथियों को पचास-पचास रुपये पर साझेदार बनाया। उनमें से एक ओझा बन गया। अगले ही दिन मसान के पास एक निर्जन स्थान में भूत झाड़ने के सब सामान तैयार हुए। कहीं से लाकर रामनाथ ने एक भैंसे को पेड़ से बांध दिया। अन्य सामान भी तैयार थे। सब तैयारी हो जाने के बाद शिवनारायण, रूपा, राधासुन्दरी तथा शिवनारायण की स्त्री वहां बुलाई गई। इसके बाद सब लोग घर लौट गये। केवल ओझा रह गया जो वहां बैठे-बैठे पागलों की तरह न मालूम क्या-क्या बड़बड़ाता रहा। सन्ध्या समय सब लोग फिर आये, पर अभी वे उस स्थान से दूर ही थे कि रामनाथ

ने कहा—सब लोगों के वहां जाने में खतरा है।

सन्ध्या तो हो ही चुकी थी, मसान करीब था, और यह स्थान बिलकुल निर्जन था। सब लोगों को यों ही डर मालूम हो रहा था। रामनाथ की बात सुनकर सब लोग ठिठककर खड़े हो गये। रूपा बोली—तो फिर ?

—इस भूत में खराबी यह है कि जब यह उतरता है, तो जो पास होता है उसी पर चढ़ता है। हां हम मन्त्र से फिर उसे हटा सकते हैं, पर फिर वही भैंसा वैंसा का खटराग करना पड़ेगा।

रूपा बोली—तो क्या हो ? मेरा तो किसी भी हालत में राधा सुन्दरी के साथ रहना जरूरी है।

रामनाथ बोला—अच्छा मैं जाता हूं, ओझाजी से पूछ आता हूं।

कहकर वह अन्धकार में विलीन हो गया, काफी देर लगाकार लौटा। इतनी देर तक उस निर्जन स्थान में खड़े रहने के कारण चारों व्यक्ति बहुत डर गये थे। बीच-बीच में सियार बोल देते थे या दूर में बंधा हुआ वह भैंसा बोल देता था, तो यह लोग और डर जाते थे। शिवनारायण की स्त्री बार-बार कह रही थी कि वह किसी भी हालत में भूत की जगह पर नहीं जायगी। रामनाथ पास ही खड़ा-खड़ा सारी बातें सुन रहा था। जब वह समझ गया कि ये लोग खूब डर गये हैं, तो वह अन्धकार से प्रकट होते हुए बोला—ओझा जी कहते हैं कि एक आदमी कोई भी चल सकता है, पर उसे अपने कपड़े-लत्ते यहीं छोड़ नंगा होकर जाना पड़ेगा, क्योंकि ओझा जी ने बतलाया कि यह भूत दो तरह के लोगों पर चढ़ नहीं पाता, एक तो हम लोग जो मंत्र से सुरक्षित हैं. और दूसरे वे लोग जिनके बदन पर कोई कपड़ा नहीं है।

रूपा भी इस शर्त पर पीछे हट गई। राधासुन्दरी भी बोली कि उसे भूत नहीं झड़वाना है, वह वापस जाना चाहती है। बोली—मैं वापस जाऊंगी।

इस पर रामनाथ ज़ोर से हंसा, बोला—देखा। रूपा बहन, अभी

से भूत ने बदमाशी शुरू कर दी। अब यह जो-कुछ कह रही हैं, वह इनकी बात नहीं है बल्कि इनके अन्दर से भूत बोल रहा है।

रूपा ने राधासुन्दरी को समझाया, पर वह किसी तरह राजी नहीं हुई। उधर रामनाथ भूत को सम्बोधित करके न मालूम कौन सी भाषा में, शायद यह भूतों की भाषा हो, कुछ डांट-डपट रहा था। अन्त में यही तय हुआ कि रामनाथ के हाथों में राधासुन्दरी को मय उसके भूत के छोड़ दिया जाय। राधासुन्दरी ना-ना करती रही, पर उसे रामनाथ हाथ पकड़कर घसीट ले गया, और साथ-ही-साथ चिल्ला-चिल्लाकर इस प्रकार की बातें कहता रहा—ह्रीं क्लीं फट् स्वाहा। भूत नहीं भूत के बाप को देख लिया। रामदीन ओझा का चेला रामनाथ ने सैकड़ों भूत मार भगाये। मालूम है तुझे जिसने भेजा है, अब या तो वहीं लौटजा या मकान में जा। ह्रीं क्लीं फट् स्वाहा। जायेगा तू कैसे नहीं। रामदीन से पाला है।

राधा सुन्दरी ने जब समझ लिया कि चिल्लाना बेकार है, तो वह चुप हो गई। इतने दिनों से उसके दिमाग पर जो असर डाला गया था, उससे उसको खुद भी कुछ-कुछ सन्देह था कि वह जो-कुछ भी कह रही है, वह उसी की बात है या भूत की बात है।

रामनाथ उसे घसीटकर वहीं पर ले गया जहां उसके अन्य दो गंजेड़ी मित्र ओझा का रूप बनाकर बैठे हुए थे। बड़े ओझा ने राधा-सुन्दरी को देखकर कहा—आ गया तू? तुझको तो मैं दो साल पहले पीलीभीत के मसान में छोड़ आया था। उस वक्त तैने बहुत माफी मांगी थी, और कहा था कि कभी किसी आदमी पर नहीं चढ़ेगा। अब की देख, तेरी क्या गत करता हूं। तैने जाकर इस स्त्री की कोख को बंद कर दिया है। ठहर जा—कहकर उसने एक बड़ा-सा डंडा लेकर हवा में फटकारा।

छोटे ओझे ने राधासुन्दरी के हाथ में एक गिलास-सा दिया, और बोला—पी, पी, आखिरी खाना खा ले। देख तेरी क्या दुर्गत

करता हूं—कहकर उसने उसी डंडे को लेकर हवा में फटकारा।

राधासुन्दरी ने वह गिलास ले लिया और पी गई। वह भंग का शर्बत था। एक के बाद एक उसे तीन गिलास शर्बत पिलाया गया।

थोड़ी देर में राधासुन्दरी के होश-हवास गुम हो गये। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उन दुष्टों ने उसे पकड़ लिया, फिर उसके सारे कपड़े उतारकर उसके साथ बलात्कार किया गया। इसके बाद उसे कुछ याद नहीं रहा कि क्या हुआ। जब वह दो दिन बाद होश में आई, तो देखा कि रूपा, लाला दीनानाथ, कृष्णकुमार आदि उसके सिरहाने पैताने जमा हैं। लाला दीनानाथ उसे होश में आते देखकर बहुत खुश हुए। और सब लोग भी विभिन्न कारणों से खुश हुए। सबसे अधिक खुश तो रूपा हुई; क्योंकि उसकी अपनी इज्जत ही नहीं, भूतवाला सिद्धान्त, जो शायद उसे अपनी इज्जत से बहुत प्यारा था, खतरे में था।

उसने लाला दीनानाथ की तरफ इस प्रकार से देखा, मानो कह रही हो—देखा? मैंने क्या कहा था।

वह प्रकट रूप से बोली—आप लोग फजूल चिन्तित हो रहे थे, मैं तो जानती थी कि भूत उतरने से कमजोरी आ जाती है। इसीलिए वह बेहोश हो गई थी। ओझों ने यही कहा था कि दो दिनों में सब ठीक हो जायगा।

लाला दीनानाथ फिर भी पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हो सके थे। उन्हें सन्देह था कि यह सब भूत-ऊत झड़वाना ढोंग है, केवल रुपये खींचने के लिए एक ढकोसला-मात्र है, असली बात कुछ और ही होगी। इसलिए वे तो इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि राधा सुन्दरी को अच्छी तरह होश आ जाय, तो सारी बात पूछें।

मज़े की बात यह है कि कृष्णकुमार भी यही समझता था। वह यह समझता था कि भूत और ओझेवाला सारा किस्सा ही गप है, और रूपा उससे भी छिपाकर कोई चाल खेल रही है। पर वह जानता था कि इस बात से जो-कुछ भी लाभ होगा, वह उसे समान रूप से

प्राप्त होगा, इस कारण कौतूहल होते हुए भी वह उसका दमन करता आया था। केवल यही नहीं, जहां तक हो सकता था, वह लाला दीनानाथ को भुलावे में डालता रहा। लाला दीनानाथ और वह एक-साथ शिवनारायण का तार पाकर बदायूं आये थे। जब कथित ओझा-गण राधासुन्दरी को लोहू-लुहान अवस्था में दे गये, तभी शिवनारायण घबड़ाया था। इसके बाद जब उसकी स्त्री ने उसे कुछ कह दिया, तो वह और भी घबड़ा गया, और रूपा के मना करने पर भी उसने कृष्णकुमार और लाला दीनानाथ को तार दे दिया। तार पाकर वे घबड़ाकर आ गये। खैरियत यह हुई कि जिस समय वे पहुंचे, उस समय रक्त स्राव बंद हो चुका था, और स्वाभाविक रूप से लाला दीनानाथ अथवा कृष्णकुमार से किसी ने उस बात का जिक्र नहीं किया था। शिवनारायण अपनी चमड़ी बचाने के लिए अपनी बहन को आग में झोंकने के लिए तैयार था, पर उसने जब यह देखा कि उस पर कोई खास खतरा नहीं है, तो उसने कुछ नहीं कहा।

पर राधासुन्दरी के होश में आने पर शिवनारायण एक तरफ जहां खुश हुआ, वहीं दूसरी तरफ वह धड़कते हुए हृदय से इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि राधासुन्दरी न मालूम क्या कहे। उसे स्वयं कोई विशेष सन्देह नहीं था, पर वह यह सोचता था कि कोई-न-कोई अनुचित बात अवश्य हुई होगी। उसकी स्त्री तो हमेशा से उसे रूपा के विरुद्ध भरा करती थी। इस कारण वह यह नहीं समझ सकता था कि जो-कुछ भी उसकी स्त्री अपनी ननद के विरुद्ध कहती है, वह सच ही होगी। सच तो यह है कि शिवनारायण को किसी बात से मतलब नहीं था। वह स्वयं गरीब आदमी था इस कारण वह लाला दीनानाथ से कुछ घबड़ाता था। उसे यह कतई पसन्द नहीं था कि रूपा उनकी स्त्री को यहां पर ले आई थी। जो-कुछ भी हो, राधासुन्दरी के होश में आने के बाद वह इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगा जैसे किसी लड़के के पर्चे काफी बिगड़ गये हों, और वह परीक्षा के परिणाम की प्रतीक्षा करे।

रूपा को भी डर था। पर उसके मन में किसी प्रकार से भी यह सन्देह नहीं था कि राधा सुन्दरी के साथ कोई ज्यादती हुई है। वह सचमुच भूत-प्रेतों में और ओझों में विश्वास करती थी। रक्तपात क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में उसके पास बनी बनाई व्याख्या थी : एक भूत कोख को बन्द करके बैठा था, दूसरे ने आकर उसे खोला, तो स्वाभाविक रूप से उनमें लड़ाई हुई होगी। पर किसी ने न तो उससे यह प्रश्न पूछा था, और न उसने किसी से कुछ कहा था। पर इस प्रकार भौतिक सिद्धान्त के द्वारा अपने मन को दृढ़ीभूत करने पर भी राधा सुन्दरी के होश में आने के बाद से वह पहली खुशी के बाद कुछ शंकित रहने लगी। पहली प्रतिक्रिया तो खुशी की थी, परन्तु नतीजा सोचकर वह कुछ-कुछ घबड़ा रही थी। वह यह भी समझ रही थी कि लाला दीनानाथ कुछ सन्देह रखते हैं।

डाक्टरी इलाज तथा रूपा की अक्लान्त परिचर्या के कारण उसे जल्दी ही अच्छी तरह होश आ गया, और अन्त में वह समय भी आ गया जब राधासुन्दरी ने अपना वक्तव्य शुरू किया। रूपा ने इतनी सावधानी तो ही थी कि जहां तक हो सकता था, वह स्वयं राधासुन्दरी के बिस्तरे के पास बनी रही, और नहीं तो इशारे से कृष्णकुमार को वहां बैठा देती थी। लाला दीनानाथ को राधासुन्दरी से अलग बात करने का जरा भी मौका नहीं दिया गया।

इसके अतिरिक्त रूपा बराबर अपनी ही हांकती रही। उसने रक्तपात के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा, और यह भी नहीं कहा कि रात के समय राधासुन्दरी को अकेली ओझों के हाथ में छोड़कर वह घर चली आई थी। वह तो बार-बार यही कहती रही—जब राधासुन्दरी भूतों की लड़ाई के कारण बेहोश हो गई, और ओझों ने कहा कि भूत भाग गये, तब हम लोग उसे घर पर ले आये। शिवनारायण ने घबड़ाकर तार दे दिया...—इत्यादि।

राधा सुन्दरी ने अच्छी तरह होश में आकर मुंह खोला, तो

बोली—जब भाभी से मैं अलग ले जायी गई।...

लालाजी मानो तैयार बैठे थे, बोले—तुम अकेली रह गई?

रूपा कुछ समय न देकर बोली—हां हम लोग बगल ही में खड़े थे। ओझा ने कह दिया था कि हम लोग राधासुन्दरी को पता न दें कि हम पास ही में खड़े हैं नहीं तो भूत ज्यादा जोर करेगा...

राधासुन्दरी ने कुछ प्रतिवाद नहीं किया, पता नहीं उसने कही गई बातों को सुना भी कि नहीं। वह बोलती गई—फिर उन लोगों ने एक बड़ा-सा डंडा लेकर मेरी तरफ फटकारा...

रूपा ने मानो शुद्ध करते हुए कहा—तुम्हारी तरफ नहीं, भूत की तरफ फटकारा।

राधासुन्दरी कहती गई—फिर उन लोगों ने मुझे कुछ पीने को दिया।...

रूपा को कुछ भी पता नहीं था, फिर भी वह कल्पना से बोली—वह तो मन्त्र वाला पानी था। तुम ने पीने से इन्कार किया, तब ओझों ने फिर डंडे फटकारे। और तुम वह पानी पी गई।

राधासुन्दरी बोली—उस पानी में कुछ अजीब सा स्वाद था।...

रूपा बोली—उसमें १०८ चीज़ें पड़ी थीं।

राधासुन्दरी बोली—मैंने ऐसे तीन गिलास पानी पिये, फिर एक ओझा ने मुझे पकड़ लिया।

रूपा घबड़ा कर बोली—मैं तो खड़ी-खड़ी सब देख रही थी। वह ओझा नहीं था भूत था। तुम्हारे शरीर के भूत में और ओझा के भूत में बड़ी लड़ाई हुई। ओझा के तीन भूत मारे गये, पर चौथे ने तुम्हारे भूत का काम तमाम कर दिया, और तुम बेहोश होकर गिर पड़ीं।

राधासुन्दरी को भूतों की लड़ाई की बात बिलकुल याद नहीं आई। उसे तो कुछ और ही बातें स्मरण आ रही थीं। उसने लाला दीनानाथ की तरफ देखा, फिर कृष्णकुमार की तरफ देखा। सोचकर बोली—इसके बाद तो मैं बेहोश हो गई।

रूपा बोली—तुम बेहोश तो हो गईं, पर भूत ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा। फिर ओझों ने उसे एक-एक अंग से भगाया, और अन्त में उसे एक शीशी में कैद कर लिया।

दीनानाथ तो भरे हुए बैठे ही थे, बोले—अभी तो तुमने कहा कि ओझा के चौथे भूत ने इस भूत का काम तमाम कर दिया। फिर उसे एक-एक अंग से निकालने की जरूरत क्यों पड़ी?

रूपा बोली—बस, इसी बात को तो आप लोग समझते नहीं हैं। मनुष्य मरकर भूत होते हैं। भूत मरकर क्या होंगे? असली बात तो यह है कि भूत मरता है फिर भी नहीं मरता है। वही भूत जो राधा-सुन्दरी की कोख को बन्द किये हुए था पहले पकड़कर पीलीभीत के मसान में छोड़ा गया था। फिर वह वहां से चला आया। ओझों ने मुझे इसका पूरा ब्यौरा बताया है।

लालाजी इस प्रकार के तर्क के विरुद्ध बिल्कुल निरुत्तर हो गए। फिर भी खिसियाये हुये थे, कृष्णकुमार से बोले—क्यों जी। तुम्हारी बहिन कभी पीलीभीत तो गई नहीं थी, फिर यह भूत उन पर कहां से आया?

कृष्णकुमार झूठ बोलने में अपनी स्त्री से किसी भी प्रकार कम नहीं था, पर उसे कुछ माकूल उत्तर सूझ नहीं पड़ा। उसके लिए खैरियत यह हुई कि रूपा बोली—भूत पैर-पैर नहीं चलते। मुझे यह भी ओझा ने बताया है। वह भूत मसान के किसी कुत्ते पर सवार हुआ, वहां से वह किसी गाय पर गया। इस प्रकार घूमते-घामते राधासुन्दरी पर सवार हो गया। अब उसे ओझे नेपाल की तराई में छोड़ने के लिए गये हैं।

यह बात सारी-की-सारी रूपा की कपोल-कल्पना थी, ऐसी बात नहीं। जब गंजेड़ी भाइयों ने यह देखा कि भंग के नशे में वे कुछ अधिक ज्यादती कर गये हैं, और राधासुन्दरी की हालत बहुत खराब है, शायद मामला पुलिस तक जाय, तो वे रूपा से यह कहकर खिसक

गए थे—यह भूत बहुत बदमाश है, इसलिए हम इसे हिमालय की तराई में छोड़ने जा रहे हैं।

असल में थे वे बदायूं में ही, पर छिपे हुए थे। क्या घटना-चक्र होता है इसे देखकर तभी प्रकट होना चाहते थे।

लाला दीनानाथ ने और प्रश्न नहीं पूछा, क्योंकि वे घबराये कि कहीं हिमालय तक जाने का खर्च उनसे वसूल न किया जाय। अब तक जिन खर्चों का जिक्र किया गया था, उनमें हिमालय जाने का खर्च नहीं था। रूखे तरीके से बचावात्मक ढंग से बोले—फिर वे ओझे कैसे हैं, जो भूत को छोड़ने के लिए हिमालय गये? उनके तो मन्त्र में ही इतनी ताकत होनी चाहिए थी कि जहां चाहें वहां भूत को भेज दें।...

रूपा बोली—मैंने भी यही बात कही, पर सब ओझों को सब मन्त्र थोड़े ही आते हैं।

इधर तो ये लोग भूत ओझा और इन सब बातों पर विचार कर रहे थे, उधर राधासुन्दरी खाट पर पड़े-पड़े यह बात सोच रही थी कि पूरी बात बतावे कि नहीं। वह बड़े असमंजस में पड़ी हुई थी। क्रोध तो यही कह रहा था कि सब बातें कह दो। वह समझती थी कि उसके साथ जितनी ज्यादतियां हुई हैं, वे सब रूपा के इशारे पर उसकी जानकारी में हुईं।

पर उसने जब इसके नतीजे पर गहराई से सोचा, तो उसने यह नतीजा निकाला कि सारी बातें बताने पर लाला दीनानाथ का आश्रय छूट जायगा, और उसके बाद कृष्णकुमार के यहां भी आश्रय नहीं मिलेगा। इसलिए क्रोध का दमन कर उसने यही निश्चय किया कि कोई बात बताई न जाय। दुर्बलता के कारण वह चुपचाप रूपा और दूसरों की बातें सुनती रही।

लाला दीनानाथ तीसरे ही दिन सब के साथ अपने शहर में लौट गये।

: २२ :

वीणा ने एकाएक सत्यभामा से एक दिन कहा—माँ मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं—कह कर उसने ज़रा-सा सिर नीचा कर लिया।

कई दिनों से माँ और बेटी में चखचख चल रही थी। सत्यभामा यही कह रही थी कि महेन्द्र को अब रोका नहीं जा सकता, वीणा को फौरन कोई निर्णय कर लेना चाहिए। वीणा इस पर समय मांग रही थी (इन दिनों वह पहले की तरह बिलकुल प्रत्याख्यान नहीं करती थी, यह सुमित्रा का असर था) इस कारण जब वीणा ने यह वाक्य कहा, तो सत्यभामा समझ गई कि वह अपने विवाह के सम्बन्ध में ही कुछ कहना चाहती है।

बोली—जरूर, जरूर। चलो—कहकर वह अपने कमरे में गई, और भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

वीणा ने बिना किसी भूमिका के कहा—मैंने तुम्हारी बात मानने का निश्चय कर लिया है।

यह निर्णय सत्यभामा के लिए इतना अप्रत्याशित था कि वह सहसा विश्वास नहीं कर सकी। उसने यह समझा कि सुनने में कहीं पर कुछ गलती हुई है। बोली—तुमने क्या किया?

—मैंने तुम्हारी बात मान ली है—कहकर उसने एक अजीब-सा मुंह बनाया।

अब की बार सत्यभामा को यह विश्वास हो गया कि सुनने में कहीं कोई गलती नहीं है। फिर भी उसने पूछा—तो फिर मैं महेन्द्र को पक्की बात लिख दूं?

वीणा बोली—लिख सकती हो, पर जल्दी क्या है?

सत्यभामा को अब इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं था कि करीब-करीब इस एक साल के दीर्घ संग्राम में उसी की विजय हुई थी, पर न मालूम क्यों इस विजय पर वह उतनी प्रसन्न नहीं हो सकी जितनी कि

उसको आशा थी। बोली—खूब अच्छी तरह सोच-समझ लिया न? इधर मैं लिख दूं, फिर तुम इनकार कर दो, बीच में मैं मुंह दिखाने लायक न रह जाऊं, ऐसा न हो। अच्छी तरह सोच लो।

—मैंने अच्छी तरह सोच लिया।

सत्यभामा ने इस पर कुछ कहा नहीं, केवल ध्यान से वीणा का मुंह देखने लगी। कहीं पर कोई कांटा-सा उसे चुभ रहा था। यद्यपि उसकी विजय हुई थी, फिर भी उसकी आत्मा यही कह रही थी कि यह अच्छा नहीं हुआ, इसमें कहीं कुछ गलती अवश्य है। यद्यपि सत्यभामा उच्च वर्ग की सारी भावनाओं को अपना कर उनसे ओत-प्रोत हो चुकी थी, और यद्यपि वह इस समय प्रौढ़ा नहीं तो, यौवन के अन्तिम चरण में थी, फिर भी उसे तारुण्य की प्रेम-सम्बन्धी पुकार सुनाई पड़ती थी। विजय का प्रथम आनन्द थिरा जाते ही वह स्पष्टता के साथ अपने मन को देख पाई। उसे अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि वीणा अपनी बात पर ही डटी रहती, तो कदाचित् अधिक उपयुक्त होता।

बोली—इन सब मामलों में आवेश से काम नहीं लेना चाहिए। मैं यह नहीं चाहती कि मैं एक बात कह रही हूं इसलिए तुम उसे मान लो। ऐसा हो सकता है कि मेरी बहुत तजुर्बे-भरी बात सुनने पर भी तुम सुखी न हो पाओ। तब मैं यह नहीं चाहती कि तुम मुझे कोसो कि मेरे कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हुआ। अपनी बुद्धि से सोचो, और जो तुम्हें ठीक मालूम पड़े उसे करो। मेरा और तुम्हारे पापाजी का काम इतना ही है कि हम तुम्हें सलाह दें।

वीणा कुछ कहने जा रही थी, पर उसे रोकती हुई सत्यभामा बोलती गई—एक तरफ प्रेम है और दूसरी तरफ जीवन की सारी अन्य आवश्यकताएं हैं, अब तुम चुन लो। हां इस तरफ बाद को शायद प्रेम भी हो जाय। पर ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। मुझे ऐसे सैकड़ों दम्पतियों की बात मालूम है जिनमें कोई विशेष प्रेम नहीं है, फिर भी वे अच्छी तरह जीवन काट देते हैं।

वीणा ने कहा—मेरे लिये ऐसी कोई बात नहीं है। सुमित्रा बहन के साथ बातचीत करके मैं यह समझ गई कि मैं जिसे प्रेम समझ रही थी, वह मोह था। कोई भी नौजवान मेरे सामने पड़ता, तो मैं उसके मोह में पड़ जाती। मैं यह भी समझ गई, और यह सुमित्रा बहन ही से मालूम हुआ कि विवाह को सफल करने के लिये प्रेम की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। कम-से-कम हम लोगों में ऐसा ही है। तुम ठीक ही कहती हो कि बड़े-से-बड़े प्रेम के नाम पर हम खाने-पीने वाली उच्च वर्ग की लड़कियाँ कोई स्थायी त्याग नहीं कर सकतीं। तुम्हें मालूम नहीं मैंने अपने तजर्बे के लिये दस दिनों तक अपने को ऐसे वातावरण में रखने की चेष्टा की, जो अपेक्षाकृत गरीबी का हो। मैंने पंखा नहीं चलाया, मैंने बहुत-सा काम खुद किया, और मुझे तजर्बा हो गया कि जो बातें तुम मेरे सम्बन्ध में कहा करती हो, वे सही हैं—कहकर वह एकाएक रोने लगी, और उसने मां की गोद में मुंह छिपा लिया।

सत्यभामा को अब अपनी विजय की पूरी ग्लानि मालूम हुई। वह वीणा के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—पगली लड़की तू सुमित्रा की बातों को सुनकर भुलावे में आ गई। तुझे इतनी बातों पर सोचने की क्या जरूरत है? यदि तू किसी से सचमुच प्यार करती है, और वह गरीब है, तो इस पर उतना सोचने की आवश्यकता क्या है? अभी तेरे पापाजी कमा रहे हैं, मेरे पास भी दस-बीस हज़ार होंगे, तेरा भाई भी पढ़कर लायक हो रहा है, फिर तुझे क्या चिन्ता है?

इस प्रकार अब अजीब परिस्थिति यह हो गई कि वीणा को जो बात कहनी चाहिये वह सत्यभामा के मुंह से निकलने लगी, और जो बात सत्यभामा को कहनी चाहिये, उसे वीणा कहने लगी। अन्त में वीणा बोली—मैं सुरेन्द्र से प्रेम नहीं करती। पहले जो धारणा थी, वह गलत थी। सुमित्रा बहन ने मेरी आंखें खोल दीं। मैं सुरेन्द्र के बाहरी रूप को पसन्द करती हूं, पर वह जिस प्रकार रुपयों को देखता है, मैं

उन्हें उस प्रकार देख नहीं पाती। उसने समय-समय पर मुझसे कुछ रुपये लिये थे, एक छोटी-सी बात पर उसने उन्हें लौटा दिया। रुपये लौटा दिये इसका मुझे कोई दुःख नहीं है, पर उसने दिये हुए रुपये का पाई-पाई हिसाब रक्खा, और लौटाते समय पाई-पाई लौटा दिया, यह बात मेरी कुछ समझ में नहीं आई। तब से मैंने कई बार जांचा तो यह मालूम हुआ कि हमारे दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न हैं।

इस प्रकार से वीणा ने बहुत-सी बातें ऐसी कहीं जिनके सम्बन्ध में सत्यभामा को कुछ भी पता नहीं था। सत्यभामा ने वीणा को समझाया कि सुमित्रा जीवन के सम्बन्ध में बहुत निराशावादी दृष्टिकोण रखती है, इसलिए उसकी बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। पर इन बातों का वीणा पर कोई असर नहा पड़ा। वह बस यही रट लगाती रही—उसने रुपयों का हिसाब क्यों रक्खा? इसका मतलब यह है कि पहले से ही वह मुझसे प्रेम नहीं करता था। प्रेम और हिसाब का क्या सम्बन्ध है?

सत्यभामा ने समझाया—प्रेम और हिसाब का भले ही भावुकता के संसार में कोई सम्बन्ध न हो, पर हमारे दैनिक जीवन में दोनों साथ-साथ चलते हैं, इससे कोई बाधा नहीं पड़ती है। सुरेन्द्र ने छोटी-सी बात पर रुपये लौटा दिये, इससे उसमें आत्म-सम्मान की भावना की प्रबलता जाहिर होती है। मैं तो इसमें कोई बुराई नहीं देखती। एक आदर्श समाज में मैं यही समझती हूं कि धनियों में तो होगी उदारता और गरीबों में आत्म-सम्मान।

इतने दुःख में भी वीणा बिना हंसे नहीं रह सकी, बोली—तुम्हारा यह आदर्श समाज तुम्हें मुबारक हो, जिसमें धनी गरीबों के ट्रस्टी होंगे। मैं इस प्रकार के हिसाब रखने में मानसिक संकीर्णता ही पाती हूं। क्रोध को मैं समझ पाती हूं, क्रोध के आवेश में लिये हुए रुपये लौटा देना भी समझ में आता है, पर वर्षों तक बिना किसी कारण के हिसाब लिखते रहना यह मेरी समझ में नहीं आता।

जब सत्यभामा ने यह देखा कि वीणा पक्का निश्चय कर चुकी है, तो उसने डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप से सलाह की। दो-तीन दिनों तक वह ठहरी भी रही, फिर उसने महेन्द्र को पत्र लिख दिया।

तीन महीने के अन्दर ही यह शादी हो गई।

: २३ :

विश्वम्भरनाथ की कार डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप के बंगले के सामने अभी अच्छी तरह खड़ी नहीं हो पाई थी कि वह कार के अन्दर से तेजी से निकला, और बिना कुछ सूचना दिये एकदम डाक्टर साहब के कन्सल्टिंग रूम में दाखिल हो गया। डाक्टर साहब एक रोगी को उस समय देख रहे थे, उनके तेवर चढ़ गये, पर जब उन्होंने विश्वम्भर-नाथ को देखा तो मधुर हंसते हुए दाहिनी तरफ एक कमरा दिखाते हुए बोले—वहां बैठिये। मैं अभी एक मिनट में आता हूं—कहकर वे रोगी की परीक्षा में तल्लीन हो गये।

विश्वम्भरनाथ था तो बहुत जल्दी में, पर जाकर बताये हुए कमरे में बैठ गया। थोड़ी देर में डाक्टर साहब उस कमरे में आये, बोले—कहिये कुशल है न?

विश्वम्भरनाथ कुछ झुंझलाहट में पर व्यापारियों की तरह हंसता हुआ बोला—कुशल होती तो आपके पास क्यों आता? समाचार यह है कि मेरे पिताजी ने जिस लड़की से शादी की है, उसे तीन महीने से गर्भ है—कहकर उसने डाक्टर साहब की तरफ ऐसी दृष्टि से देखा मानो जवाब तलब कर रहा हो।

डाक्टर साहब को कुछ आश्चर्य हुआ, पर अधिक नहीं, क्योंकि

उन्होंने जो दवा देने का वादा किया था, उसे पूरा नहीं किया था। जवाब तो उनका तैयार ही था, बोले—मैं तो बराबर उन्हें दवा दे रहा हूं, अब वे खाते न हों, तो मैं क्या करूं—कहकर कुछ सोचते हुए बोले—इस दवा की दो खुराकें भी यथेष्ट थीं, मैं तो उन्हें पचास से अधिक खुराकें दे चुका।

विश्वम्भरनाथ व्यावहारिक आदमी था। जो हो चुका उस पर रोने के लिए वह नहीं आया था। फिर भी उसने जवाब तलब करने के लहजे में बातचीत शुरू की, इसका कारण यह था कि वह डाक्टर पर रोब गाँठना चाहता था। वह जो इस प्रकार रोब डालना चाहता था उसका कारण यह था कि आगे जो-कुछ कहेगा उसका अधिक असर पड़े। बोला—अजीब बात है, दवा ले जाते हैं, और पीते नहीं। दवा पैसे देकर ले जाते होंगे न ?

डाक्टर साहब रुपये खाये हुए थे, इस कारण कुछ दबे हुए थे, पर इस बात से कुछ तैश में आकर बोले—यह तो आप अनुमान ही कर सकते हैं कि मैंने कोई खैराती दवाखाना नहीं खोला है, और न लालाजी खैरात के पात्र ही हैं।

विश्वम्भरनाथ समझ गया कि डाक्टर साहब खीझ गये हैं, और इस समय डाक्टर के खीझने से काम नहीं बनता था, बोला—मैंने यह थोड़े ही कहा था। मैं तो यह कह रहा था कि अजीब आदमी हैं पिता-जी कि मोल लेकर दवाएं ले जाते हैं, और उन्हें खाते नहीं हैं।

—हाँ कुछ समझ में नहीं आता—डाक्टर साहब ने इतना ही कहा।

विश्वम्भरनाथ बोला—खैर अब जो हुआ सो हुआ, अब आगे क्या हो ?

डाक्टर साहब जरा देर में समझे, बोले—अब कुछ नहीं हो सकता।....

विश्वम्भरनाथ सहसा कुछ बोल न सका। कुछ समझकर बोला—

पर कुछ करना तो पड़ेगा ही। हम खड़े-खड़े यह तो नहीं देख सकते कि हमारी जायदाद हमारे हाथ से निकल जाय—कहकर जैसे परिणाम से घबराकर बोला—डाक्टर साहब, आपको मुझे बचाना ही पड़ेगा। आप चाहें तो सब-कुछ कर सकते हैं।

डाक्टर साहब बोले—आप तो बच्चों की सी बातें कर रहे हैं। सारी एलोपैथी में, और मेरे खयाल से होम्योपैथी, यूनानी और वैद्यक में कोई ऐसी दवा नहीं है, जिसके सेवन से आपका काम बने।

विश्वम्भरनाथ चिन्तित होकर बोला—यह तो आप ठीक कह रहे हैं कि अब पिताजी को दवा देने से कुछ काम नहीं बनेगा, पर मान लीजिये कि दवा मेरी सौतेली मां को दी जाय?

—यह कैसे हो सकता है?

—होने को सब-कुछ हो सकता है। दवा आप दीजिये, बाकी सब काम हम कर लेंगे।

डाक्टर साहब बोले—यह तो एक अपराध होगा। कहीं पकड़े गये तो जेलखाने की नौबत आयगी।

इस पर विश्वम्भरनाथ ने यह समझा कि मोल-भाव के लिए डाक्टर ऐसा कर रहे हैं। अपनी कुर्सी को डाक्टर के पास खींचकर बोला—आप कुछ परवाह न करें। काम बना दें, फिर मुझसे जो-कुछ भी सेवा बन पड़ेगी, वह करूंगा।

डाक्टर साहब ने सोचा वीणा की शादी में पैंतीस हजार रुपये खर्च हो गये। शादी के बाद भी हर महीने दामाद या लड़की को किसी-न-किसी बहाने मोटी रकमें देनी पड़ती हैं। यदि भाग्य से यह आंख का अन्धा और गांठ का पूरा फंस गया है, तो इसे अच्छी तरह मूंड़ा क्यों न जाय? रही गर्भ गिरा देने की बात सो वे उस सम्बन्ध में कुछ नहीं करेंगे। कोई ऐसी-वैसी दवा दे देंगे जिससे कि लाठी भी न टूटे, और सांप भी मर जाय। ऐसी-वैसी दवा देने के बाद को फजीहत होगी, पर वह भुगत लिया जायगा। इस समय जैसे बहाना बना दिया

कि लालाजी ने दवा नहीं पी, इस कारण काम नहीं बना, उस समय भी वैसा कोई बहाना बना देंगे। कौन वे विश्वम्भरनाथ की जमींदारी में बसते हैं, आकर ज्यादा चीं-चपड़ करेगा, तो नौकर से निकलवा देंगे।

इन बातों को सोचकर बोले—काम बहुत खतरे का है, यह तो आप समझ ही रहे हैं। आप स्वयं दवा पिलाने तो जायंगे नहीं, इसलिए किसी तीसरे सम्भव है चौथे या पांचवें आदमी तक की मदद लेनी पड़े। जब कोई खतरा पड़ेगा, तो वह सबको ले डूबेगा। माफ कीजिये मैं ऐसे काम में नहीं पड़ता।

विश्वम्भरनाथ बोला—डाक्टर साहब क्या आप मुझे कोई दुधमुंहा बच्चा समझते हैं? यदि आपको खतरा है, तो मुझे उससे पहले खतरा है। फिर न आप मुझे कोई रसीद दे रहे हैं, न और कोई बात हो रही है। क्या सबूत रहेगा कि आपने दवा दी थी? क्या आप मुझ से यह आशा करते हैं कि मैं जिन लोगों से काम लूंगा, उन्हें यह भी बता दूंगा कि मैंने दवा कहां से ली है?

दोनों में कुछ देर और बातचीत हुई। विश्वम्भरनाथ बोला—अभी दवा के लिए मैं सिर्फ एक हजार रुपये दे रहा हूं। काम हो जाने पर आप विश्वास रक्खें, मैं आपको दस हजार रुपये दूंगा।

काम होने पर जिन रुपयों का वायदा था, उस पर तो डाक्टर साहब कुछ नहीं बोले क्योंकि वे जानते थे कि न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। इसलिए उन्होंने कोशिश करके तात्कालिक फीस को दुगुना करवा लिया।

डाक्टर साहब ने कहा कि वे एक ऐसी दवा देंगे, जिसमें न तो कोई रंग होगा, और न कोई स्वाद। यह तय रहा कि दो घण्टे बाद विश्वम्भरनाथ स्वयं आकर दवा ले जायगा।

जब दो घण्टे बाद विश्वम्भरनाथ आया, तो डाक्टर साहब ने एक बिना लेबिल की शीशी में नल का आध पाव पानी दे दिया, और कहा—यह किसी नमकीन चीज जैसे दाल या ऐसी कोई चीज में मिला-

कर खिला दी जाय, तो अधिक असर होगा। विश्वम्भरनाथ ने शीशी को लेकर अन्दर की जेब में रखा, और प्रतिज्ञा के अनुसार रुपये देकर रवाना हो गया।

: २४ :

वीणा की शादी के बाद महेन्द्र अक्सर जब भी उसे छुट्टी मिलती आकर ससुराल में रहता था। जिन दिनों वह आता था, घर में बड़ी चहल-पहल रहती थी। नित्य ही उत्सव-सा लगा रहता था। कहीं ब्रिज हो रहा है, तो किसी दिन रमी खेली जाती थी। यह सब तो हुआ, पर वीणा कोई विशेष खुश नहीं थी। सत्यभामा यह समझती थी कि अभी सुरेन्द्र की याद कुछ-कुछ बाकी है, इस कारण उसका मन अभी स्थिर नहीं हो पा रहा है।

वह यह समझती थी कि समय पाकर जैसे सब घाव भर जाते हैं, वैसे ही यह भी घाव भर जायगा। कई बार उसे अफसोस भी होता था कि क्यों लड़की पर जबर्दस्ती-सी करके यह शादी कराई गई। पर अब पीछे मुड़ कर देखने का समय नहीं था।

वह दूर रह कर जहां तक हो सकता है इस सम्बन्ध में चेष्टित रहती थी। पर मामला सुधरने के बजाय बिगड़ते ही चला जा रहा था। कम-से-कम वीणा को देखकर यही मालूम होता था, इससे वह बहुत परेशान थी।

ऐसे समय में जब महेन्द्र ने काश्मीर जाने का प्रस्ताव रक्खा, तो सत्यभामा ने इसका तपाक से स्वागत किया। सारी तैयारियां हो गईं,

और यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि सारा खर्च डाक्टर साहब के ही मत्थे था ।

एक खतरनाक रोगी को देखने के लिए डाक्टर साहब सन्ध्या समय दामाद और लड़की से विदाई लेकर निकल गये । गाड़ी आठ बजे की थी, डाक्टर साहब ने कहा—हो सकेगा, तो मैं सीधे स्टेशन पहुंच जाऊंगा ।

पर रोगी की हालत ऐसी बिगड़ी कि वे स्टेशन न जा सके । रात-भर वे रोगी के बंगले पर हो रहे । जब सवेरे रोगी की हालत कुछ सुधरी, तो वे घर पर आये । सत्यभामा से पहला ही प्रश्न यह किया—वे लोग गये ?

—महेन्द्र गया ।

डाक्टर साहब ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया । वे ऐसे उत्तर की ही आशा करते थे । चाय का घूंट पीते हुए बोले—चलो ठीक रहा ।

सत्यभामा बोली—वीणा नहीं गई ।

डाक्टर साहब के गले में चाय अटक गई, संभल कर बोले—क्यों ? क्यों ? वह कहां गई है ?

—वह घर में ही है । महेन्द्र सुमित्रा के साथ चला गया ।

डाक्टर साहब कुछ समझ नहीं पाये, तो सत्यभामा ने एक पत्र निकालकर उनके हाथ में दिया । यह पत्र सुमित्रा का लिखा हुआ था । डाक्टर साहब पत्र को पढ़कर सन्नाटे में आ गये । सुमित्रा ने स्पष्ट रूप से वीणा को यह लिखा था—बहन, एक झूठ को दूसरे झूठ से ढकने की चेष्टा मैंने कई वर्षों तक की । उस समय मैं यही समझती थी कि झूठ के साये में ही मैं जी सकती हूं । पर अब मैंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया । दुःख है कि मेरे इस नवीन रूप से आविष्कृत सत्य का नाम महेन्द्र है । मैं इस सत्य को किसी भी दाम पर अपनाने का निश्चय कर चुकी हूं । कोई भी झूठ मुझे इससे रोक नहीं सकता । मैं इस एक सत्य की बलिवेदी पर सारी मिथ्याओं को चढ़ा दूंगी । मुझे

निश्चय है कि मैं किसी के साथ अन्याय नहीं कर रही हूं। तुम्हारे लिए महेन्द्र कभी कुछ भी नहीं था। इसलिए उसे तुमसे अलग ले जाकर मैं तुम्हारी भी रक्षा कर रही हूं। मेरी यही प्रार्थना है (यदि तुम उसे मूल्य दो, तो) जब सत्य तुम्हारे सामने आ जाय, और मुझे आशा है वह अवश्य आयेगा, तो उससे मुंह न मोड़ना। हृदय खोलकर उसे अपनाना। इसे मेरी शुभ इच्छा समझो।

तुम्हारी बहन

सुमित्रा

डाक्टर साहब इस पत्र को पढ़कर कुछ भी समझ नहीं पाये। उनका मस्तिष्क घूम गया।

इतने में बाहर से जरूरी बुलावा आया। जल्दी से प्याले की चाय को समाप्त कर वे बाहर गये, तो कन्सल्टिंग रूम में विश्वम्भरनाथ खड़ा था। वह बहुत खुश मालूम होता था, पर डाक्टर साहब उसे देखकर चिढ़ गये। उनको कुछ बोलने का मौका न देकर विश्वम्भरनाथ बोला—आप की कृपा से काम बन गया।

डाक्टर साहब क्रोध में खड़े होकर बोले—क्या मतलब आपका? काम बन गया, कैसा काम बन गया?

विश्वम्भरनाथ की बाछें खिल गईं, बोला—नाराज क्यों हो रहे हैं? यह लीजिये, आपका पुरस्कार—कहकर उसने सौ के नोटों की एक काफी बड़ी गड्डी डाक्टर साहब को दे दी।

डाक्टर साहब बड़े आश्चर्य में पड़ गये। नल के पानी से कैसे काम बना, यह उनकी समझ में न आया।

उन्हें पता नहीं था कि विश्वम्भरनाथ के छोटे भाई ने भी एक डाक्टर से दवा ला कर खिलाई थी। जो-कुछ भी हो डाक्टर साहब ने नोटों की गड्डी उसी जेब में रख ली, जिसमें सुमित्रा का पत्र पड़ा था, और अस्फुट रूप से बोले—कुछ समझ में नहीं आता। कुछ समझ में नहीं आता।